अगस्त–2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष – 87 । अंक – 8 । प्रति – ₹ 25 । ₹–300 वार्षिक

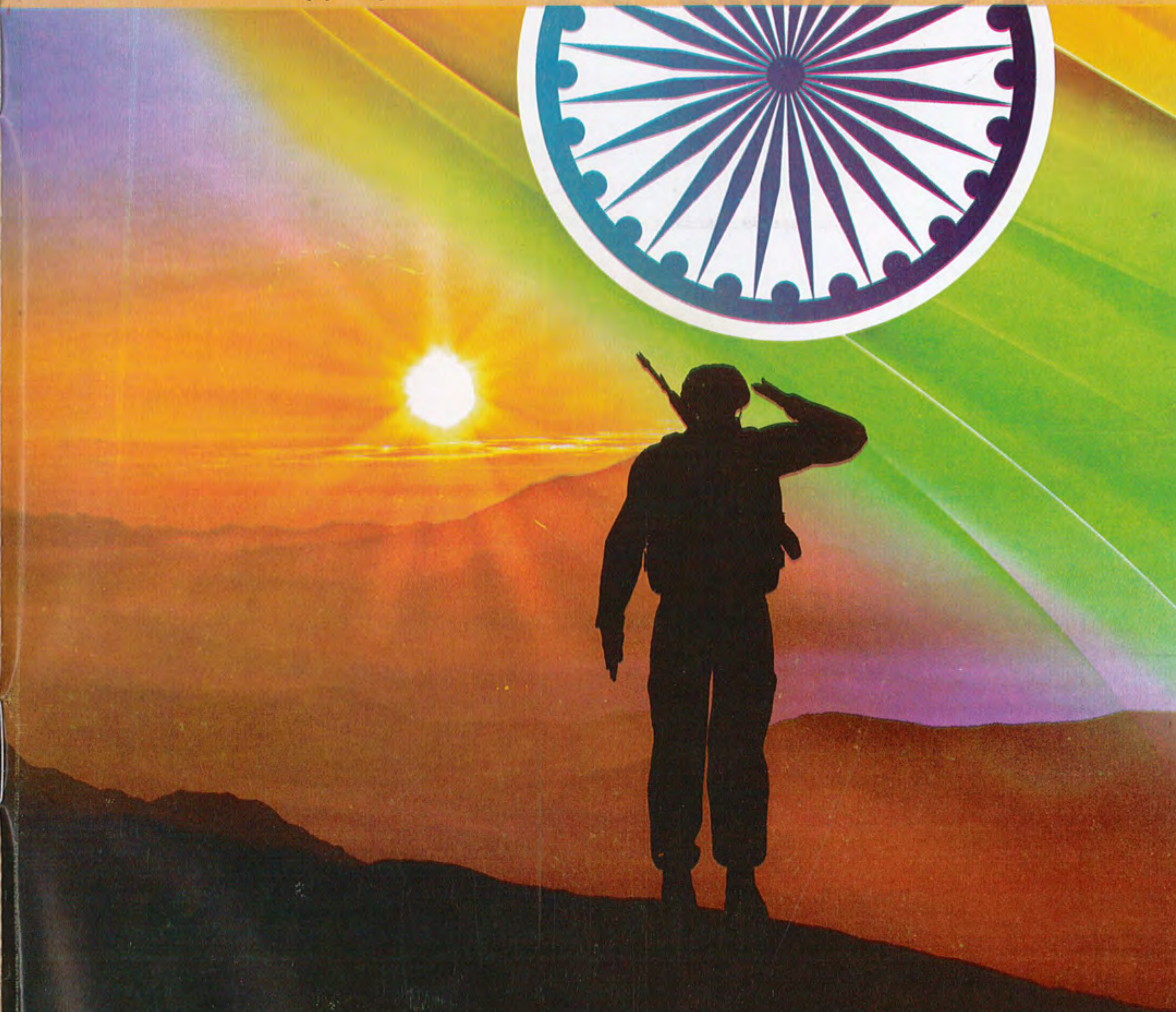

12 ▸ मन चंगा तो कठौती में गंगा

23 ▸ अपना उद्धार स्वयं करो

33 ▸ समय को साधें, जीवन को सँवारें

41 ▸ मंजिल तेरे पग चूमेगी, आज नहीं तो कल

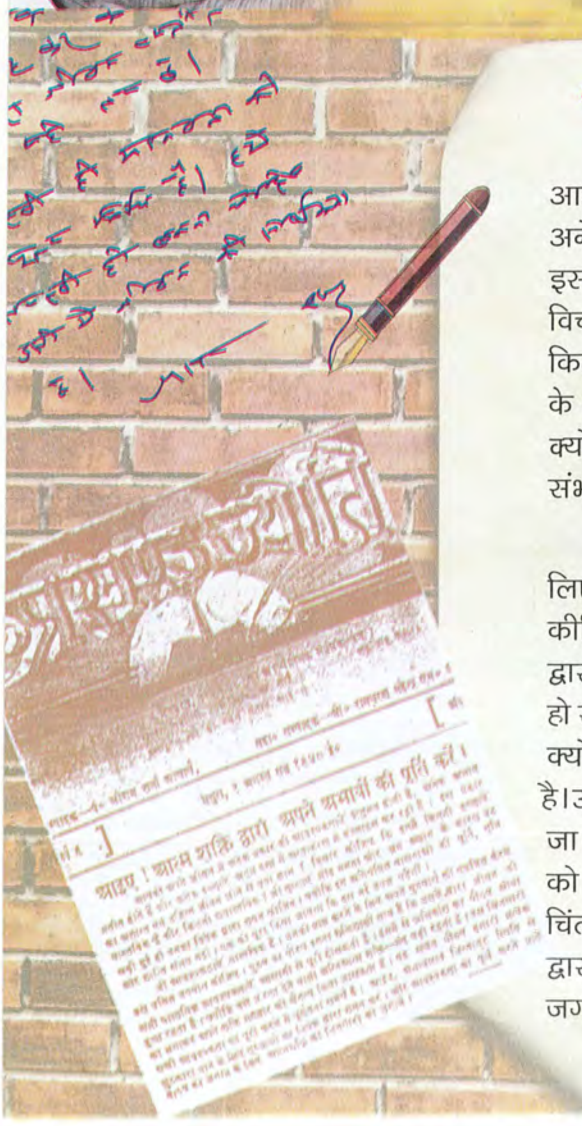

आइए! आत्मशक्ति द्वारा अपने अभावों की पूर्ति करें

"आपको अपने जीवन में अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ अनुभव होती हैं, अनेक अभाव प्रतीत होते हैं और अनेक इच्छाएँ अतृप्त दशा में अंतःकरण में कोलाहल कर रही हैं। इस प्रकार का अशांत एवं उद्विग्न जीवन जीने से क्या लाभ? विचार कीजिए कि इनमें कितनी इच्छाए वास्तविक हैं और कितनी अवास्तविक ? जो तृष्णाएँ मोह,ममता और भ्रम,अज्ञान के कारण उठ खड़ी हुई हैं उनका विवेक द्वारा शमन कीजिए। क्योंकि इन अनियंत्रित वासनाओं की पूर्ति, तृप्ति और शांति संभव नहीं।एक को पूरा किया जाएगा कि दस नई उपज पड़ेंगी।

जो आवश्यकताएँ वास्तविक हैं। उनको प्राप्त करने के लिए अपने पुरुषार्थ को एकत्रित करके इसे उचित उपयोग कीजिए। पुरुष का पौरुष इतना शक्तिशाली तत्त्व है कि उसके द्वारा जीवन की सभी वास्तविक आवश्यकताएँ आसानी से पूरी हो सकती हैं।इसमें से अधिकांश का पौरुष सोया हुआ रहता है; क्योंकि उसे प्रेरणा देने वाली अग्नि–आत्मशक्ति मंद पड़ी रहती है।उस चिनगारी को जगाकर अपने शक्ति भंडार को चैतन्य किया जा सकता है।यह सचेत पौरुष हमारी प्रत्येक सच्ची आवश्यकता को पूरी करने में पूर्णतया समर्थ है। आइए, अभावग्रस्त चिंतातुर स्थिति से छुटकारा पाने के लिए तृष्णाओं का विवेक द्वारा शमन करें और आवश्यकता को पूर्ण करने वाले पौरुष को जगाने के लिए आत्मशक्ति की चिनगारी को जगावें।"

—श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449 2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	08
अगस्त	:	2023
प्र.श्रावण-द्वि.श्रावण	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.07.2023
वार्षिक चंदा		
भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

शिवत्व

यह श्रावण माह शिवत्व के जागरण के भाव को लेकर के आया है। भारतीय संस्कृति उद्देश्यों की उच्चता से, विचारों की तेजस्विता से, भावनाओं की उदात्तता से शिवत्व को परिभाषित करती आई है। इस देश की मिट्टी में भगवान शिव का ऐसा तप है कि यदि इसके भीतर के रुद्र, भैरव और शूलिन जागते हैं तो वो शूरमाओं को जन्म देते हैं और यदि इसके भीतर के चंद्रप्रकाश, भालनेत्र, बीजाध्यक्ष और महाबुद्धि जागते हैं तो वो ज्ञानियों को जन्म देते हैं और यदि इसके भीतर के नीलकंठ, महादेव, विरूपाक्ष और पालनहार जागते हैं तो वो भक्तों को जन्म देते हैं और यदि इसके भीतर के स्वयंभू, महाकाल और पाशविमोचक जागते हैं तो वे महापुरुषों को जन्म देते हैं।

मानवता को अमृत का पान वही करा पाता है, जो पहले नीलकंठ बन पाता है। श्रावण के संदेश का सार यही है कि सौभाग्य के द्वार संघर्षों के पथों से गुजरने पर ही खुल पाते हैं। इसीलिए भगवान शिव का एक रूप सृजन का, कल्याण का, सौम्यता का प्रतीक है जिस रूप में वे कैलास में निवास करते हैं, कल्याण का पथ प्रशस्त करते हैं, श्रेष्ठता का रक्षण करते हैं और दूसरा रूप वो है, जिसमें वो श्मशान में निवास करते हैं, गले में उनके मुंडमाल होती है, कालसर्प उनका यज्ञोपवीत बनता है, त्रिशूल उनके हाथ में दिखता है और चरणों की थिरकन प्रलय को जन्म देती है। शिवत्व कल्याण का भी प्रतीक है और क्रांति का भी और दोनों ही रूप जीवन के शाश्वत प्रवाह का प्रतीक हैं। ❑

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विषय सूची

- ❊ आवरण-1 — 1
- ❊ आवरण-2 — 2
- ❊ शिवत्व — 3
- ❊ **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  चित्त और चेतनता का आधार — 5
- ❊ **पर्व विशेष- श्रावण मास**
  सावन में बनें शिवकृपा के अधिकारी — 8
- ❊ बुद्धिमान ही नहीं, श्रद्धावान भी बनें — 10
- ❊ मन चंगा तो कठौती में गंगा — 12
- ❊ हे ईश्वर तेरी लीला अपरंपार — 15
- ❊ साधुता व सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति
  संत तुकाराम — 18
- ❊ आत्मिक प्रगति और सत्संग की महिमा — 20
- ❊ अपना उद्धार स्वयं करो — 23
- ❊ **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—11**
  बालसुलभ चेष्टाएँ — 25
- ❊ मोक्ष—भारतीय संस्कृति की एक
  अभूतपूर्व अवधारणा — 26
- ❊ बद्धावस्था से सिद्धावस्था की ओर — 29
- ❊ जीवन जीने का सर्वोत्तम मार्ग — 31
- ❊ समय को साधें, जीवन को सँवारें — 33
- ❊ **चेतना की शिखर यात्रा—251**
  गायत्री तीर्थ : जहाँ लोग तर जाते हैं — 36
- ❊ मंजिल तेरे पग चूमेगी, आज नहीं तो कल — 41
- ❊ **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—172**
  परामर्श का विद्यार्थियों पर प्रभाव — 44
- ❊ हिमालयी अस्मिता के सुलगते प्रश्न — 47
- ❊ **युगगीता—279**
  मूढ़भाव से युक्त होता है तामसिक तप — 49
- ❊ दांपत्य प्रेम और समर्पण के प्रतीक
  सारस पक्षी का रोचक संसार — 52
- ❊ **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  इस युग के भगीरथ (उत्तरार्द्ध) — 54
- ❊ **विश्वविद्यालय परिसर से—218**
  सांस्कृतिक प्रतिनिधियों की उपस्थिति से
  सुगंधित हुआ विश्वविद्यालय — 59
- ❊ **अपनों से अपनी बात**
  कृपा और कोप, दोनों ही जिसके रूप,
  उनके स्मरण का मास — 63
- ❊ युवा वर्ग से अपेक्षा (कविता) — 66
- ❊ आवरण—3 — 67
- ❊ आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

स्वतंत्रता दिवस पर सूर्य का स्वागत करता भारत का सैनिक

अगस्त-सितंबर, 2023 के पर्व-त्योहार

मंगलवार	01 अगस्त	पूर्णिमा	गुरुवार	14 सितंबर	कुशाग्रहणी अमावस्या
शनिवार	12 अगस्त	कमला एकादशी	रविवार	17 सितंबर	विश्वकर्मा जयंती/ वाराह जयंती
मंगलवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस	सोमवार	18 सितंबर	हरितालिका व्रत
शनिवार	19 अगस्त	हरियाली तीज	मंगलवार	19 सितंबर	श्रीगणेश चतुर्थी
सोमवार	21 अगस्त	नाग पंचमी	बुधवार	20 सितंबर	ऋषि पंचमी
मंगलवार	22 अगस्त	सूर्यषष्ठी	गुरुवार	21 सितंबर	सूर्य षष्ठी
बुधवार	23 अगस्त	तुलसी जयंती	मंगलवार	26 सितंबर	जलझूलनी एकादशी 'वै.'/ वामन जयंती
रविवार	27 अगस्त	पवित्रा एकादशी	शुक्रवार	29 सितंबर	महाप्रयाण दिवस वंदनीया माताजी/महालयारंभ
गुरुवार	31 अगस्त	रक्षाबंधन			
गुरुवार	07 सितंबर	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी 'वै.'			
रविवार	10 सितंबर	अजा एकादशी			

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

चित्त और चेतनता का आधार

इस संसार में वैसे तो अनेकों ऐसी चुनौतियाँ हैं, जो विज्ञान या वैज्ञानिक जगत् के सम्मुख अनुत्तरित खड़ी हैं, परंतु संभवतया उनमें से एक चुनौती ऐसी है, जो इनमें से सर्वाधिक विषम कही जा सकती है और वो चुनौती हमारे चैतन्य होने की है, जिसे अँगरेजी में 'काँशसनेस' कहकर पुकारा जाता है।

प्रश्न यह है कि आखिर वो कौन-सी प्रक्रिया है, जिसके आधार पर हमारे भीतर चेतन शक्ति का अवतरण होता है। वैज्ञानिक दृष्टि अभी मन या मस्तिष्क को ही चेतना का केंद्र मानती है और इसीलिए उनके लिए यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि आखिर इस 1300 ग्राम के मस्तिष्क के अंदर ऐसा क्या घटता है, जो हमें चेतनता प्रदान करता है, जिसके माध्यम से हम भाँति-भाँति के संवेदनों, संकेतों इत्यादि को एकरूपता प्रदान करने में सक्षम हो पाते हैं।

इस प्रश्न का उत्तर भारतीय संस्कृति या भारतीय अध्यात्म तो बड़े ही सहजता से दे सकते हैं। जड़-चेतन, पुरुष-प्रकृति, परा-अपरा, ज्ञान-विज्ञान ये भाव भारतीय अध्यात्म का आधार रहे हैं।

सांख्य दर्शन का आधार ही इस सत्य का अन्वेषण करना रहा है तथापि आधुनिक विज्ञान के लिए चुनौती बड़ी है, इतनी बड़ी कि प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्टुअर्ट सदरलैंड को तो एक बार यह तक लिखना पड़ा कि 'चेतनता एक ऐसी अबूझ पहेली है कि जिसके विषय में आज तक कुछ भी पढ़ने लायक लिखा नहीं गया है।'

भारतीय अध्यात्म ने सबसे पहले इसी प्रश्न के ऊपर कार्य किया इसलिए उनके लिए, भारतीय मनीषियों के लिए यह चुनौती कभी इतनी बड़ी नहीं रही तथापि विज्ञान एवं अध्यात्म द्वारा इसे समन्वित रूप से समझने के लिए यह जरूरी है कि पहले वैज्ञानिक दृष्टि से इस चुनौती का अध्ययन करने का प्रयत्न किया जाए।

यह जानने के लिए कि विज्ञान की दृष्टि से समस्या कहाँ है, पहले इस दिशा में सोचना अनिवार्य है कि आखिर विज्ञान हमारे मन या मस्तिष्क में चेतनता का स्थान कहाँ मानता है? उनकी दृष्टि से आखिर वो कौन-सा मस्तिष्कीय भाग है, जो हमारे भीतर चेतना को प्रवाहित करने का या यों कहें कि हमें चेतनता प्रदान करने का कार्य करता है?

मस्तिष्क का स्कैन करने पर यह पता चलता है कि मस्तिष्क का थैलेमस नामक हिस्सा जो कि एक तरह से मस्तिष्क के रिले सेंटर का कार्य करता है और वहीं से संपूर्ण मस्तिष्क में तरंगें और तंत्रिका संदेश प्रसारित होते हैं—इस कार्य में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहता है। यदि थैलेमस एवं प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स के मध्य का संवाद टूट जाए तो व्यक्ति अचेतन हो जाता है।

ऑपरेशन के समय व्यक्ति को ऐनेस्थीसिया देने पर यही वो हिस्सा है, जिसका शांत हो जाना हमारी चेतनता को थोड़ी देर के लिए लुप्त कर देता है। ऐसे शोधों को इस बात से भी पुष्टि मिली कि मस्तिष्क के वे तीन प्रमुख अंग जो हमें चैतन्य बनाए रखने में मदद करते हैं, यथा— थैलेमस, प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स, पॉस्टीरियर पैराइटल कॉर्टेक्स— वे मनुष्यों में ही सबसे ज्यादा विकसित पाए गए हैं।

पर्व विशेष— श्रावण मास

सावन में बनें शिवकृपा के अधिकारी

सावन का समय भारत में वर्ष भर का एक विशेष कालखंड है, जब प्रकृति अपने पूरे वैभव में होती है। ग्रीष्म ऋतु की झुलसाती तपन के बाद, गरमी के कहर को झेलती धरती पर बारिश की फुहार के साथ एक नए जीवन का शुभारंभ होता है। जुलाई से अगस्त के बीच का यह समय सनातन आस्था का प्रतीक भी है, जिसमें भगवान शिव की पूजा-अर्चना की जाती है।

कृषि की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण माह रहता है, जब किसान फसलों की बुआई करते हैं। धान, मक्का, ज्वार-बाजरा से लेकर सूरजमुखी व कई सब्जियों की बुआई इस दौरान की जाती है। गरमी की झुलस के बाद वास्तव में यह राहत का दौर रहता है।

गरमी से सूखे पड़े पेड-पौधे, नदी, तालाब व जलस्रोत सावन की बारिश के साथ नया जीवन पाते हैं। चारों ओर खुशी की लहर छाई रहती है। आसमान को ढके बादलों के झुंड, चारों ओर आवारा बच्चों की भाँति भागते-दौड़ते, खेलते, मस्ती में झूमते बादलों के फाहे पूरे परिवेश को अपने जादुई आगोश में लिए रहते हैं।

आश्चर्य नहीं कि हर व्यक्ति के जीवन में इसकी मस्ती का आलम कुछ यों छाया रहता है कि यह माह हर वर्ष स्मृतिकोश में नई यादों को जोड़ता है। हालाँकि धरती के कुछ हिस्सों में प्राकृतिक कोप एवं आपदा की घटनाएँ भी इस दौरान घटित होती हैं, जिनमें से अधिकांश मानवनिर्मित रहती हैं।

श्रवण नक्षत्र वाली पूर्णिमा के कारण इस माह का नाम श्रावण पड़ा है। हिंदू पंचांग के अनुसार वर्ष का यह पाँचवाँ माह है, जो सबसे पवित्र माहों में से एक है। यह धार्मिक आस्था से जुड़ा हुआ माह है, जब भक्तिमय गीत-संगीत, धार्मिक अनुष्ठानों एवं आध्यात्मिक साधनाओं के साथ वातावरण गुँजायमान रहता है।

रक्षाबंधन, नागपंचमी, हरितालिका तीज, गुरु पूर्णिमा जैसे पर्व-त्योहार इसी बीच पड़ते हैं। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का महोत्सव सावन माह की पूर्णिमा के 7 दिन बाद अष्टमी के दिन मनाया जाता है।

सावन में वैसे तो सभी दिन खास रहते हैं, लेकिन सोमवार का विशेष महत्त्व रहता है, जिनकी संख्या 4 से 5 रहती है। इस दौरान कुँवारी कन्याओं के लिए 16 सोमवार के व्रत का विधान रहता है, मान्यता है कि इनका नैष्ठिक पालन करने से उन्हें भगवान शिव जैसा जीवन साथी मिलता है।

इस दौरान कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि पर पड़ने वाली शिवरात्रि का विशेष महत्त्व रहता है, जिसमें भगवान शिव और माता पार्वती की पूजा-अर्चना की जाती है। सावन माह में शिव भक्ति के साथ कई पौराणिक कथाएँ-गाथाएँ जुड़ी हुई हैं। मरकंडू ऋषि के पुत्र मार्कण्डेय दीर्घायु के लिए सावन माह में घोर तप कर शिवकृपा के अधिकारी बने थे, जिसके बल पर मृत्यु के देवता यमराज भी उनके समक्ष नतमस्तक हो गए थे।

दूसरी पौराणिक कथा के अनुसार भगवान शिव सावन माह में धरती पर अवतरित होकर अपनी ससुराल गए थे और जहाँ अर्घ्य और जलाभिषेक के साथ उनका भव्य स्वागत किया गया था।

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

माना जाता है प्रत्येक सावन माह में भगवान शिव अपनी ससुराल आते हैं और पृथ्वीवासियों के लिए शिव की कृपा को प्राप्त करने का यह उत्तम समय रहता है। फिर सावन माह में ही समुद्रमंथन भी हुआ था।

समुद्रमंथन से निकले हलाहल, कालकूट को सृष्टि के रक्षार्थ भगवान शिव ने कंठ में धारण किया था, जिस कारण वे नीलकंठ कहलाए। विष की ऊष्णता के शमन हेतु सहायतार्थ देवी-देवताओं ने जल अर्पित किया था। इसी कारण सावन में शिवलिंग पर जल चढ़ाने का विशेष महत्त्व माना जाता है।

इस दौरान सावन की शिवरात्रि के दौरान शिवालयों में गंगाजल के अभिषेक के प्रतीक काँवड़ मेले का आयोजन होता है। शिवभक्त कंधों पर गंगाजल लिए निकटस्थ शिवालय में इसको चढ़ाते हैं, भोलेनाथ को अपनी आस्था का पुण्य स्नान कराते हैं और तीर्थयात्रा के साथ अपने जीवन को धन्य बनाते हैं।

माना जाता है कि सावन के प्रारंभ में भगवान विष्णु योगनिद्रा में चले जाते हैं, ऐसे में सृष्टि की कमान अगले चार माह भगवान शिव के हाथों में रहती है। संत-तपस्वी लोग इस बीच चातुर्मास्य की साधना पूरी करते हैं। वे एक ही स्थान पर स्थिर होकर अपने साधना-अनुष्ठान संपन्न करते हैं।

इन चौमासे के दौरान शिव-शक्ति की आराधना अभिन्न रूप से जुड़ी रहती है, जिसमें भगवान शिव और उनके परिवार से जुड़े व्रत-त्योहार आदि मनाए जाते हैं। इस दौरान बादलों से ढके आसमान से सतत बरसती बारिश की फुहारों के बीच जहाँ नदी-नाले दनदनाते हुए पर्वतों के शिखर से नीचे घाटियों की ओर प्रवाहित होते हैं और मैदानों में विराट जलराशि से भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं। वहीं पूरी धरती हरियाली की चुनरी ओढ़ लेती है। मौसम न अधिक गरम और न अधिक ठंढा रहता है। घूमने का इस समय अपना आनंद रहता है। यह बात दूसरी है कि इस दौरान मैदानों में बाढ़ तो पहाड़ों में भूस्खलन, बादल फटने जैसी प्राकृतिक लोमहर्षक आपदाएँ भी घटित होती नजर आती हैं और आजकल इनकी आवृत्ति एवं विकरालता क्रमशः बढ़ती जा रही है।

भोलेनाथ को समर्पित सावन माह में कई तरह की प्राकृतिक आपदाओं की घटनाएँ आएदिन पूरे देश एवं विश्व में सुनने-देखने को आती रहती हैं। इसे कुपित प्रकृति के कोप के रूप में भी समझा जा सकता है।

अपनी तात्कालिक स्वार्थांधता एवं लोभ में जकड़ी मानव जाति द्वारा प्रकृति के साथ हो रही सामूहिक छेड़खान एवं अत्याचार की प्रतिक्रिया स्वरूप में इन घटनाओं को देखा जा सकता है। कुपित प्रकृति शिव के तांडव एवं महाकाली के प्रचंड कोप के रूप में धरती पर अपना कहर बरसाती है।

ऐसे में हर वर्ष जान-माल से लेकर ध्वस्त मानवीय रचनाओं एवं स्थापनाओं की विकरालता भयावह रहती है। इस सबको देखते हुए आवश्यकता इस बात की है कि मानव अपने संकीर्ण स्वार्थ एवं तात्कालिक लाभ की हवस से बाहर निकलकर, प्रकृति का सम्मान करे।

शिव की कल्याणकारी शक्ति के रूप में प्रकृति की आराधना करे तथा मन-वचन और कर्म से प्रकृति के अनुकूल आचरण करे, तभी मानव इनके कोप से बच सकेगा और शिव-शक्ति की कृपा का अधिकारी बन सकेगा। ❑

सविता सर्वस्य प्रसविता।

—निरुक्त (10/31)

अर्थात सविता देवता ही समस्त सृष्टि को जन्म देने वाले देव हैं।

बुद्धिमान ही नहीं, श्रद्धावान भी बनें

मनुष्य को परमात्मा ने बुद्धि नामक एक अतुलनीय शक्ति प्रदान की है। इसी के आधार पर मनुष्य सृष्टि की अप्रतिम कृति है। इतना ही नहीं, मनुष्य ने बुद्धि-बल पर संसार को सुंदर-से-सुंदर बनाया है। बिना किसी के बतलाए उसने सृष्टि के गोपनीय रहस्यों को बुद्धि के बल पर खोज निकाला है। जीवन में न जाने कितनी सुख-सुविधाओं का समावेश किया है। बुद्धि ने मानव को केवल भौतिक विभूतियों तक ही ले जाकर नहीं छोड़ दिया, बल्कि उसने उसे आत्मा-परमात्मा, पुरुष और प्रकृति के रहस्यों तक भी पहुँचा दिया है।

मनुष्य की बुद्धि आज जीवन-मृत्यु के रहस्यों को खोज निकालने पर तुली हुई है। संसार के कारणभूत पंच-तत्त्वों पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपना आज्ञाकारी बना रही है। प्रकृति की पराधीनता से मुक्त होकर मानव आज बुद्धिबल पर स्व-निर्भर होने का प्रयत्न कर रहा है। उसकी अब तक की प्रगति देखते हुए यह बात असंभव नहीं दिखाई देती कि वह जब जिस ऋतु को उत्पन्न कर ले और जब चाहे जिस वातावरण को निर्माण कर ले। आज का युग मानवीय बुद्धि-शक्ति का प्रमाणसूचक साक्षी बना हुआ है।

मानव बुद्धि की शक्ति ऐसी अमोघ है कि यदि वह चाहे तो संसार को दो दिन में ही नष्ट कर दे और चाहे तो उसे स्वर्ग बना दे, किंतु आज की परिस्थितियाँ देखते हुए ऐसा नहीं लग रहा है कि मानवीय बुद्धि की यह शक्ति संसार को स्वर्ग के रूप में परिणत करेगी। इसके अधिकाधिक नरक बनने की संभावनाएँ अवश्य दृष्टिगोचर होने लगी हैं।

आगे की बात तो छोड़ दीजिए, आज के दिन भी संसार एक नरक से क्या कम बन गया है। चारों ओर दुःख-पीड़ा, शोक-संताप, आवश्यकता एवं अभाव का ही तांडव दृष्टिगोचर हो रहा है। मनुष्य, मनुष्य के लिए भूत-प्रेतों की तरह शंका का स्वरूप बना हुआ है।

सुख-सुविधा के अगणित साधन संचित हो जाने पर भी मनुष्य को उनका कोई लाभ नहीं मिल रहा है। जिस आश्वस्तता एवं निश्चिंतता को प्राप्त करने के लिए मनुष्य की बुद्धि पूरी शक्ति से लगी हुई है, उसकी प्राप्ति तो क्या दर्शन भी संभव नहीं हो रहे हैं।

निस्संदेह आज के युग के बुद्धिमान मनुष्य की यह दुर्दशा विचारणीय है। अब प्रश्न यह है कि आज के इस बुद्धि-विकास के युग में इन विकृतियों का कारण क्या है और क्या है इनके समाधान का उपाय ? अब वह समय आ गया है, जबकि मनुष्य को रुककर सोचना, विचार करना है, अन्यथा बुद्धिवाद से हाँका हुआ संसार शीघ्र ही अपना विनाश कर लेगा।

बात वास्तव में यह है कि मनुष्य ने आज बुद्धि को तो विकट रूप से बढ़ा लिया है, किंतु उस पर नियंत्रण करना नहीं सीखा है। बुद्धि की शक्ति का एक उज्ज्वल पक्ष है तो दूसरा अँधियारा पक्ष भी है।

आज आक्रमण, अत्याचार, अन्याय, उत्पीड़न, शोषण, लाभ-लोभ, छल-कपट, वंचना-प्रताड़ना, विजय, आतंक, अभिमान, नोच-खसोट, लूटमार, छीना-झपटी, चोरी-मक्कारी, ध्वंस अथवा विनाश सफल हुआ करते हैं।

बुद्धि का अनियंत्रित विकास केवल दूसरों के लिए ही दु:खदायी नहीं होता, स्वयं अपने लिए भी हानिकर होता है। अतिबुद्धिसंपन्न मानव को चिंतन, असंतोष की ज्वाला में ही जलना होता है। वह बहुत कुछ पाकर भी कुछ नहीं पाता।

एक बुद्धिवादी कितना ही शास्त्रज्ञ, विशेषज्ञ, दार्शनिक, वैज्ञानिक, तत्त्ववेत्ता आदि क्यों न हो, बुद्धि का अहंकार उसके हृदय में शांति को ठहरने नहीं देता है। वह दूसरों को ज्ञान देता हुआ भी स्वयं आत्मिक शांति के लिए तड़पता ही रहता है। बुद्धि की तीव्रता पैनी छुरी की तरह रह-रहकर किसी दूसरे को अथवा स्वयं उसको दिन-रात काटती ही रहती है।

मानव की अनियंत्रित बुद्धि की शक्ति मनुष्य जाति की बहुत बड़ी शत्रु है। अतएव बुद्धि के विकास के साथ-साथ उसका नियंत्रण भी आवश्यक है। किसी शक्तिशाली का नियंत्रण तो उससे अधिक शक्ति से ही हो सकता है। तब भला समग्र सृष्टि को अपनी मुट्ठी में करने वाली शक्ति बुद्धि का नियंत्रण करने के लिए कौन-सी दूसरी शक्ति मनुष्य के पास हो सकती है।

मनुष्य की वह दूसरी शक्ति है—श्रद्धा, जिससे बुद्धि जैसी उच्छृंखल शक्ति पर अंकुश लगाया जा सकता है, उसका नियंत्रण-नियमन किया जा सकता है। बुद्धिबल को ध्वंस की ओर जाने से रोककर सृजन के मार्ग पर अग्रसर किया जा सकता है। विशुद्ध बुद्धिवादी के पास स्नेह, सौजन्य, सौहार्द, सहानुभूति, भ्रातृत्वभाव जैसी कोमलताएँ कतई नहीं होतीं।

इन मानवीय गुणों की जननी श्रद्धा ही है। श्रद्धालु अंत:करण वाला मनुष्य सेवा-सहयोग, क्षमा-दया, परोपकार तथा परमार्थ में विश्वास करता है, न्याय और नियमन उसकी विशेषताएँ हैं।

मानवता के इतिहास में दो परस्पर विरोधी ख्याति के व्यक्तियों के नाम पाए जाते हैं। एक वर्ग तो वह है, जिसने संसार को नष्ट कर डालने, जातियों को मिटा डालने तथा मानवता को जला डालने का प्रयत्न किया है। दूसरा वर्ग वह है, जिसने मानवता का कष्ट दूर करने, संसार की रक्षा करने, देश और जातियों को बचाने के लिए तप किया है, संघर्ष किया है और प्राण दिया है।

इतिहास के पन्नों पर आने वाले यह दोनों वर्ग निश्चित रूप से बुद्धिबल वाले रहे हैं। अंतर केवल यह रहा है कि श्रद्धा के अभाव में एक की बुद्धिशक्ति अनियंत्रित होकर केवल बर्बरता का प्रदर्शन कर सकी और दूसरे का बुद्धिबल श्रद्धा द्वारा नियंत्रित होने से सज्जनता का प्रतिपादन करता रहा है।

यदि आज की चमत्कारिणी बुद्धि का ठीक दिशा में उपयोग करना है, संसार से दु:ख-दरद को दूर करना है, अपनी धरती माता को स्वर्ग बनाना है, मानव सभ्यता की रक्षा के साथ-साथ उसका विकास करना है तो अंत:करण में श्रद्धा की प्रतिस्थापना करनी होगी।

आपत्तिकाल से पार होने का सबसे बड़ा सहारा है—उज्ज्वल भविष्य की आशा।

श्रद्धा ही एक ऐसा प्रकाश है, जो मनुष्य को अनंत अंधकार में खोने से बचाए रखता है। श्रद्धावान को जहाँ अपने प्रति स्नेह रहता है, वहाँ दूसरों के प्रति भी। आज बुद्धि के अतिरेक के युग में इसी श्रद्धा नामक मानव मूल्य का अभाव हो गया है।

जिस दिन मनुष्य में श्रद्धा के भाव की बहुलता हो जाएगी, बुद्धिवादिता का नियमन होगा, तब आज के ध्वंससूचक बौद्धिक चमत्कार सृजन संबंधी वरदान सहजता से बन जाएँगे। अत: हमें बुद्धिमान के साथ-ही-साथ श्रद्धावान बनने का भी प्रयास करना चाहिए। ❑

मन चंगा तो कठौती में गंगा

पूजा-पाठ, धर्म-कर्म में रहने वाले लोगों की अक्सर यह शिकायत रहती है कि हमने वर्षों तक धर्म-कर्म किए, पर फिर भी हमें उसका सुफल प्राप्त नहीं हुआ। हमने दान किए, पुण्य किए, फिर भी उसका परिणाम, प्रतिफल हमें क्यों नहीं मिला? हमनें तीर्थयात्राएँ भी खूब कीं, पर हमारी स्थिति पूर्ववत् ही रही।

भला ऐसा क्यों? क्या धर्म-कर्म से कोई लाभ नहीं होता? हमने तो सुना था कि धर्म-कर्म करने वाले लोग सदा सुखी रहते हैं। उन्हें पुण्य मिलता है। उन्हें भगवान का आशीष प्राप्त होता है, पर यह सब मेरे जीवन में क्यों घटित न हुआ? ऐसे ढेर सारे प्रश्न, जिज्ञासाएँ हमारे मन में आते हैं।

पर क्या सचमुच धर्म-कर्म से लाभ नहीं होता? और यदि होता है तो फिर कई लोगों के जीवन में ऐसा क्यों नहीं होता? ऐसे सारगर्भित, स्वाभाविक प्रश्नों का समाधान होना ही चाहिए। क्यों? क्योंकि धर्म-कर्म का कोई सुफल परिणाम मिलता न देख अक्सर लोग धर्म-कर्म से विमुख हो जाते हैं और फिर अधर्म के मार्ग पर, असत्य के मार्ग पर, बुराई के मार्ग पर चल पड़ते हैं। इसलिए इन प्रश्नों का समाधान होना ही चाहिए।

धर्म-कर्म से निस्संदेह लाभ होता है। शास्त्रों में ऐसा ही कहा गया है, पर समझना यह जरूरी है कि धर्म-कर्म वास्तव में धर्म-कर्म हो। धर्म के नाम पर आडंबर न हो, पाखंड न हो। यदि धर्म-कर्म अपने वास्तविक स्वरूप में होता है तो व्यक्ति के जीवन में शुद्धता आती है। उसके मन में निर्मलता आती है और मन निर्मल होने पर व्यक्ति को परमात्मा की अनुभूति अवश्य होती है।

यदि ऊपर से धर्म-कर्म होता रहे, तंत्र-मंत्र, पूजा-पाठ किया जाता रहे और जीवन में शुचिता नहीं आए तो इसका अर्थ हुआ कि हमसे अवश्य ही कहीं गलती हो रही है।

यदि हम धर्म के नाम पर सिर्फ कर्मकांड और चिह्नपूजा कर रहे हैं और दान-परोपकार, अहंकार की भावना से कर रहे हैं, पूजा-पाठ के साथ-साथ बुरे कर्म भी कर रहे हैं, तीर्थाटन भी पर्यटन, पिकनिक मनाने, ऐशोआराम करने के लिए कर रहे हैं तो निश्चित ही ऐसे धर्म-कर्म, दान-परोपकार, तीर्थयात्राओं का सुफल हमें प्राप्त नहीं हो सकता है। धर्म-कर्म, पूजा-पाठ का उद्देश्य यही है कि हम मन से निर्मल बनें।

हमारे मन से काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, दुर्भाव, द्वेष आदि विकार मिटें और हमारे हृदय में करुणा, प्रेम, संवेदना, सत्य, क्षमा, दया, अहंकार आदि दिव्य भावों की अभिवृद्धि हो और जब धर्म-कर्म इस हेतु से होता है, यज्ञीय भाव से होता है, यज्ञ-कर्मकांड, पूजा-पाठ के वास्तविक दर्शन को, भाव को जीवन में जिया जाता है, उतारा जाता है तभी धर्म-कर्म का सुफल हमें चित्तशुद्धि और हृदय में उमगते-उमड़ते करुणा, प्रेम, सत्य, क्षमा, सेवा, सहकार, संवेदना आदि दिव्य भावों के रूप में प्राप्त होने लगता है और हम आनंदित होने लगते हैं।

प्रभु का प्रेम हमें प्राप्त होने लगता है। हम चलते-फिरते तीर्थ बन जाते हैं। अपने देहरूपी

देवालय में स्थित आत्मा में हम परमात्मा की अनुभूति पाने लगते हैं। हमारा घर भी तब तीर्थ बन जाता है। हमारे लिए कठौती का पानी भी गंगा बन जाता है।

जैसा कि कहा गया है मन चंगा तो कठौती में गंगा। यह लोकोक्ति संतों के, भक्तों के, ऋषियों के जीवन में सदैव, शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है। संत रविदास ने अपनी सच्ची भक्ति से इस लोकोक्ति को चरितार्थ कर दिखाया था।

संत रविदास भगवान के सच्चे भक्त थे। वे अपने कर्म को पूजा के भाव से ही किया करते थे। वे जूते बनाने का काम करते थे। एक दिन उनके पास एक ब्राह्मण आए और बोले—''मेरी जूती टूट गई है, इसे ठीक कर दो।'' रविदास ने उनकी जूती ठीक कर दी।

ब्राह्मण जूती पहनकर गंगास्नान को जाने लगे। तभी संत रविदास ने कहा—''ब्राह्मणदेव! आप मेरी ओर से गंगा माँ को एक कौड़ी (पैसा) भेंट कर दीजिएगा। मैं तो काम में व्यस्त हूँ। समय पर ग्राहकों को उनके जूते ठीक करके देने हैं। इसलिए सोमवती अमावस्या जैसे पावन अवसर पर भी मैं गंगास्नान को नहीं जा पाता हूँ।''

संत रविदास से पैसे लेकर ब्राह्मणदेव माँ गंगा के दर्शन हेतु चल पड़े और उधर संत रविदास अपने काम में लीन हो गए। गंगास्नान के बाद जब ब्राह्मण आने लगे तो उन्हें याद आया कि रविदास के दिए पैसे गंगा माँ को समर्पित करना है।

वे गंगातट पर खड़े होकर बोले—''हे माँ गंगे! रविदास की यह भेंट स्वीकार करो।'' उसी वक्त गंगा जी से एक हाथ प्रकट हुआ और आवाज आई—''लाओ! रविदास जी की यह भेंट मेरे हाथ पर रख दो।'' जिसके बाद ब्राह्मण ने उस कौड़ी को हाथ पर रख दिया।

उस विहंगम दृश्य को देखकर ब्राह्मण के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। जब वे वहाँ से लौटने लगे तब उन्हें पुन: आवाज सुनाई दी—''ब्राह्मण लो! यह कंगन रविदास को मेरी ओर से भेंट कर देना।'' ब्राह्मण हैरान होकर उस रत्नजड़ित कंगन को लेकर चल पड़े।

जाते-जाते रास्ते में उन्होंने सोचा कि रविदास को क्या मालूम कि माँ गंगा ने उसके लिए कोई भेंट दी है। ब्राह्मण सोचने लगे कि अगर मैं यह रत्नजड़ित कंगन रानी को भेंट कर दूँ तो राजा मुझे मालामाल कर देगा।

वे तुरंत ही राजदरबार में पहुँचे और वह कंगन रानी को भेंट कर दिया। वह सुंदर कंगन पाकर रानी बहुत खुश हुई। ब्राह्मण रानी से इनाम पाने की सोच ही रहे थे कि तभी रानी ने राजा से वैसा ही दूसरा कंगन दूसरे हाथ में पहनने के लिए लाने को कहा।

राजा ने उस ब्राह्मण से कहा—''मुझे इसी तरह का दूसरा कंगन चाहिए।'' तब ब्राह्मण ने कहा—''आप राजजौहरी से ऐसा दूसरा कंगन बनवा लें। मेरे पास दूसरा कंगन नहीं है।'' तभी राजजौहरी ने कहा—''इस कंगन में जड़े हुए रत्न बेहद कीमती हैं। वे राजकोश में भी नहीं हैं। इसलिए इस तरह का दूसरा कंगन बना पाना संभव नहीं है।''

ब्राह्मण की इस बात पर राजा को क्रोध आया और उसने ब्राह्मण को ही दूसरा कंगन कहीं से भी लाने को कहा और नहीं लाने पर मृत्युदंड देने की चेतावनी भी दे दी। यह सुनकर ब्राह्मण की आँखों से ग्लानि के आँसू बहने लगे। उन्होंने सारी सच्चाई राजा को बताई और फिर कहा—''केवल रविदास जी ही ऐसा दूसरा कंगन माँ गंगा से लाकर दे सकते हैं।''

राजा को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह ब्राह्मण के साथ संत रविदास के पास पहुँचा। वहाँ रविदास जी हमेशा की तरह जूते ठीक करने में लगे थे। ब्राह्मण ने रविदास के पैर पकड़ लिए और उन्हें सारी बातें बताईं। संत रविदास का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने राजा से ब्राह्मण को जीवनदान देने की प्रार्थना की, पर राजा ने कहा—''ब्राह्मण को जीवनदान देने के बदले आपको ऐसा दूसरा कंगन देना होगा।''

तब संत रविदास जी ने वहीं एक बरतन में जल लिया और माँ गंगा से निर्मल मन से, प्रेमभाव से वैसा ही दूसरा कंगन प्रदान करने की प्रार्थना की।

तभी उनकी कठौती में रखे जल में लहरें उठीं, जैसी गंगा में उठती हैं। फिर उसी बरतन में वैसा ही दूसरा कंगन प्रकट हो गया। गंगा उनकी कठौती के जल में ही प्रकट होकर उसी प्रकार का दूसरा कंगन उन्हें प्रदान कर गईं। राजा यह सब देखकर बहुत हैरान हुआ।

तब रविदास ने कहा—''मन चंगा तो कठौती में गंगा।'' तभी से यह लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गई। धर्म-कर्म का अर्थ यही है कि धर्म-कर्म करने के साथ-साथ हमारा कर्म भी धर्ममय होना चाहिए। हमारा मन भी पवित्र होना चाहिए। हमारे विचार भी पवित्र होने चाहिए। हमारा कर्म भी पवित्र होना चाहिए। तभी हमें धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, जप-तप, यज्ञ-हवन, तीर्थ, दान, परोपकार का पूर्ण लाभ प्राप्त हो पाता है। वहाँ उपस्थित राजा व ब्राह्मण को अपनी भूल का भान हुआ। ❑

आचार्य हरिहुमत यज्ञ संचालन हेतु गांधार जा रहे थे। मार्ग में एक गाँव पड़ा, जिसके संदर्भ में यह प्रचलित था कि वहाँ का कोई भी व्यक्ति नास्तिक नहीं है। गाँव में उन्होंने देखा कि एक गृहस्थ अपने बच्चे को बुरी तरह से डाँट रहा है।

आचार्य के पूछने पर उसने बताया—''महाराज! नाराज न होऊँ तो क्या करूँ? सारे गाँव में यही ऐसा है, जो नास्तिक है। इसके कारण मुझे भर्त्सना का शिकार होना पड़ता है। आप ही बताएँ कि मैं क्या करूँ?'' आचार्य बोले—''आप इस बालक को और घनिष्ठता से प्यार कीजिए।'' ऐसा कहकर वे आगे बढ़ गए। पिता व उसके परिवार ने बालक के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया और इसी का परिणाम हुआ कि वह बालक आगे चलकर प्रसिद्ध धार्मिक संत उद्दालक के रूप में विख्यात हुआ।

हे ईश्वर तेरी लीला अपरंपार

परब्रह्म को अचिंत्य, अगोचर, अगम्य कहा गया है। उसकी तात्त्विक विवेचना में तत्त्ववेत्ताओं ने कुछ विश्लेषण तो किया है, पर साथ ही नेति-नेति कहकर अपने ज्ञान की परिधि की स्वल्पता भी स्वीकार कर ली है। वस्तुत: समग्र ब्रह्म का विवेचन बुद्धि, विज्ञान एवं साधनों के माध्यम से संभव नहीं है।

तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि ईश्वरप्राप्ति की जो चर्चाएँ होती रहती हैं वे क्या हैं? यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि जीव और ब्रह्म की मिलन पृष्ठभूमि के रूप में जिस परब्रह्म परमेश्वर की विवेचना होती है उसी का साक्षात्कार एवं अनुभव संभव है।

आकाश और धरती जहाँ मिलते हैं, उसे 'क्षितिज' कहते हैं। क्षितिज का सुहावना दृश्य सूर्योदय और सूर्यास्त के समय प्राय: स्वयं देखा जा सकता है। दो रंगों के मिलने से एक तीसरा रंग बनता है। भूमि और बीज के समन्वय की प्रतिक्रिया अंकुर के रूप में फूटती है। पति-पत्नी का मिलन अभिनव उल्लास के रूप में प्रकट होता है और परिणाम संतान के रूप में सामने आता है।

जीव और ब्रह्म के मिलन की प्रतिक्रिया को ईश्वर कह सकते हैं। गैस और गैस मिलकर पानी के रूप में परिणत हो जाते हैं। शरीर और प्राण का मिलन जीवन के रूप में दृष्टिगोचर होता है। आग और जल के मिलने से भाप बनती है। नैगेटिव और पॉजीटिव धाराएँ मिलने पर शक्तिशाली विद्युत प्रवाह गतिशील होता है। हम उसी ईश्वर से परिचित होते हैं, जो आत्मा से परमात्मा के मिलन की प्रतिक्रिया के रूप में अनुभव किया जाता है।

वेदांत दर्शन में ईश्वर के रूप-स्वरूप की जितने तात्त्विक स्वरूप में विवेचना की गई है, उतनी अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, शिवोऽहम्, सच्चिदानंदोऽहम्, सोऽहम् आदि सूत्रों में यह रहस्योद्घाटन किया गया है कि यह आत्मा ही ब्रह्म है। यहाँ आत्मा से तात्पर्य पवित्र और परिष्कृत चेतना से है। अतिमानस, सुपर ईगो, पूर्वपुरुष, भगवान, परमहंस, स्थितप्रज्ञ आदि शब्दों में व्यक्तित्व के उस उच्च स्तर का संकेत है, जिसे देवात्मा और परमात्मा भी कहा जाता है।

इसी स्थिति को उपलब्ध कर लेना साक्षात्कार, आत्मप्रतिष्ठा आदि नामों से निरूपित किया गया है। बंधन, मुक्ति या जीवनमुक्ति इसी स्थिति को कहते हैं। आत्मा चिनगारी है और परमात्मा ज्वाला। ज्वाला की समस्त संभावनाएँ चिनगारी में विद्यमान हैं। अवसर मिले तो वह सहज ही अपना प्रचंड रूप धारण करके लघु से महान बन सकती है। बीज में वृक्ष बनने की समस्त संभावनाएँ विद्यमान हैं। अवसर न मिले तो बीज चिरकाल तक उसी क्षुद्र स्थिति में पड़ा रह सकता है, किंतु यदि परिस्थिति बन जाए तो वही बीज विशाल वृक्ष के रूप में विकसित होकर दृष्टिगोचर हो सकता है।

छोटे से शुक्राणु में एक पूर्ण मनुष्य अपने साथ अगणित वंश-परंपराएँ और विशेषताएँ छिपाए रहता है। अवसर न मिले तो वह उसी स्थिति में बना रह सकता है, किंतु यदि उसे गर्भ रूप में विकसित होने की परिस्थिति मिल जाए तो एक समर्थ मनुष्य का रूप धारण करने में उसे कोई कठिनाई नहीं होती।

अणु की संरचना सौरमंडल के समतुल्य है। अंतर मात्र आधार व स्तर का है। जीव ईश्वर का अंश है। अंश में अंशी के समस्त गुण पाए जाते हैं। सोने के बड़े और छोटे कण में विस्तार भर का अंतर है—तात्त्विक विश्लेषण से उनके बीच कोई भेद नहीं किया जा सकता। उपासना और साधना के छेनी-हथौड़े से जीव के अनगढ़ रूप को कलात्मक देवप्रतिमा के रूप में परिणत किया जाता है।

अध्यात्म शब्द का तात्पर्य ही आत्मा का दर्शन एवं विज्ञान है। इस संदर्भ के सारे क्रियाकलापों का निर्माण-निर्धारण मात्र एक ही प्रयोजन के लिए किया गया है कि व्यक्तित्व को चेतना की उच्चतम परिष्कृत, सुविकसित, सुसंस्कृत स्थिति में पहुँचा दिया जाए। इस लक्ष्य की उपलब्धि का नाम ही ईश्वरप्राप्ति है।

आत्मसाक्षात्कार एवं ईश्वरदर्शन इन दोनों का अर्थ एक ही है। आत्मा में परमात्मा की झाँकी अथवा परमात्मा में आत्मा की सत्ता का विस्तार। द्वैत को मिटाकर अद्वैत की प्राप्ति मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। इसकी पूर्ति के लिए या तो ईश्वर को मनुष्य स्तर का बनना पड़ेगा या मनुष्य को ईश्वरतुल्य बनने का प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

अध्यात्म-क्षेत्र की भ्रांतियाँ भी कम नहीं हैं। सामान्य लोग आत्मा पर चढ़े कषाय-कल्मषों को काटने के लिए जो संघर्ष करना पड़ता है, इससे कतराते हैं और छोटी सड़क या पगडंडी खोजते हैं, ताकि प्रस्तुत दृष्टिकोण एवं क्रियाकलाप में कोई परिवर्तन न करना पड़े। ईश्वर को अनुकूल बनाने के लिए इतना ही काफी है कि बताई पूजा-पत्री का उपचार पूरा कर दिया जाए।

आमतौर से उपासना-क्षेत्र में यही भ्रांति फैली हुई है। मनोकामना पूर्ति के लिए पूजा-पाठ का सिद्धांत सामान्य जनों के मन में गहराई तक घुसा हुआ है। वे उपासना की सार्थकता तभी मानते हैं, जब उनके मनोरथ पूरे होते चलें।

कैसी विचित्र विडंबना है कि छोटा-सा गंदा नाला गंगा को अपने चंगुल में जकड़े और यह हिम्मत न जुटाए कि अपने को समर्पित करके गंगाजल कहलाए।

परब्रह्म एक ऐसी चेतना है, जो ब्रह्मांड के भीतर और बाहर एक नियम व्यवस्था के रूप में ओत-प्रोत हो रही है। उसके सारे क्रियाकलाप एक नियम व्यवस्था के रूप में ओत-प्रोत हो रहे हैं। उन नियमों का पालन करने वाले ही अपनी बुद्धिमता अथवा ईश्वर की अनुकंपा का समुचित लाभ उठा पाते हैं।

भगवान की बिजली से उपमा दी जा सकती है। बिजली का ठीक उपयोग करने पर उससे अनेक प्रकार के यंत्र चलाए और उठाए जा सकते हैं, पर निर्धारित नियमों का उल्लंघन किया जाए तो बिजली उन्हीं की जान ले लेती है, जिन्होंने उसको घर बुलाने के लिए ढेरों पैसा, मनोयोग एवं समय लगाया था।

उपासना ईश्वर को रिझाने के लिए नहीं, आत्मपरिष्कार के लिए की जाती है। प्रार्थना के सत्परिणामों की बहुत चर्चा होती रहती है। भगवत्कृपा के अनेक चमत्कारों का वर्णन सुनने को मिलता रहता है। उस सत्य के पीछे यह तथ्य अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ मिलता है कि भक्त ने पूजा-उपासना के प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न की और उस श्रद्धा ने उसके चिंतन एवं कर्त्तव्य को सर्वोत्तम बना दिया।

जहाँ यह शर्त पूरी की गई है, वहीं निश्चित रूप से ईश्वरीय अनुकंपा की वर्षा की हुई है, परंतु जहाँ पूजा-पाठ के द्वारा ईश्वर को रिश्वत देने की धूर्तता को भक्ति का नाम दिया गया है, वहाँ निराशा

ही हाथ लगती है। ईश्वर की सृष्टि का विस्तार अकल्पनीय है। उसमें निवास करने वाले जीव-जंतुओं की संख्या का निर्धारण भी लगभग असंभव है।

पृथ्वी पर रहने वाले जलचर, थलचर, नभचर, दृश्य, अदृश्य प्राणियों की संख्या कुल मिलाकर इतनी बड़ी है कि उनके अंक लिखते-लिखते इस धरती को कागज बना लेने से भी काम नहीं चलेगा। इतने प्राणियों के जीवन कर्म में व्यक्तिगत हस्तक्षेप करते रहना, अलग-अलग नीति निर्धारित करना और फिर उस प्रार्थना-उपेक्षा के कारणों को बार-बार बदलते रहना, ईश्वर के लिए भी संभव नहीं हो सकता।

ऐसा करने से तो उस पर व्यक्तिवादी राग-द्वेष का आक्षेप लग सकता है और फिर सृष्टि संतुलन का कोई आधार ही नहीं बचेगा। ईश्वर ने नियम मर्यादा के बंधनों में क्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में अपनी सारी व्यवस्था बना दी है और उसी चक्र में भ्रमण करते हुए जीवधारी अपने पुरुषार्थ और प्रमाद का भला-बुरा परिणाम पाते रहते हैं। यही कर्मफल का सिद्धांत है।

ईश्वर द्रष्टा और साक्षी की तरह यह सब देखता रहता है। पूजा करने वालों के प्रति राग और न करने वालों के प्रति उपेक्षा अथवा द्वेष की नीति यदि उसने अपनाई होती तो निश्चय ही इस संसार में भ्रष्टाचार एवं अव्यवस्था का कोई अंत ही न रहता।

ईश्वर की सृष्टि कर्मफल सिद्धांत पर आधारित है। यहाँ सत्कर्म का परिणाम पुण्य और दुष्कर्म का पाप के रूप में मिलता है। अतः हमें सत्कर्म का पथ अपनाकर पुण्यार्जन और ईश्वर की अनुकंपा एवं कृपा का पात्र बनना चाहिए। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

साधुता व सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति संत तुकाराम

एक महात्मा से प्राप्त 'राम कृष्ण हरि' मंत्र का श्रद्धा व भक्ति के साथ जाप करते हुए अंततः तुकाराम को भगवान श्रीहरि का दिव्य दर्शन हुआ। भगवद्दर्शन के पश्चात संत तुकाराम को अपनी आत्मा में सदैव ब्रह्मानंद की अनुभूति हुआ करती। वे गृहस्थ थे और गृहस्थी के कार्य करते हुए भी वे भगवच्चिंतन से कभी विमुख नहीं हो पाते थे।

वे हमेशा ब्राह्मी भाव दशा में ही रहते थे। खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, हँसते-रोते वे हर समय ब्राह्मी भाव दशा में ही होते थे। प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर वे भगवद्ध्यान करते, भगवत्पूजन करते, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करते, रोज हरिकीर्तन करते और अपने कीर्तन में आए हुए लोगों की ब्रह्मभाव से आव-भगत करते, रात्रि में भगवद्ध्यान करते हुए ही निद्रा में चले जाते और ब्राह्ममुहूर्त में जाग जाते। बस, यही थी संत तुकाराम की दिनचर्या। दूर-दूर से लोग उनके दर्शन करने आते, उनके उपदेश सुनते और उनके कीर्तन में शामिल होकर अपने भाग्य की सराहना करते।

संत तुकाराम की साधुता और सहिष्णुता की चहुँओर चर्चा होती। एक बार की बात है कि संत तुकाराम जी की भैंस एकादशी के दिन पड़ोस के मंबाजी बुआ की फुलवाड़ी में घुस गई। तुकाराम जी तो अधिकांश हरिचिंतन और हरिकीर्तन में होते थे, इसलिए घर का काम-काज जिजाई और कान्होबा ही देखते थे। तुकाराम जी को एक और पुत्र हुआ था, जिसका नाम महादेव था। महादेव अभी छोटा था। महादेव को दूध पिलाने के लिए ही जिजाई अपने घर से एक भैंस ले आई थी। आज वही भैंस पड़ोसी की फुलवाड़ी में घुस गई थी।

यह फुलवाड़ी तुकाराम जी के घर के पास ही मंबाजी बुआ की थी। उस फुलवाड़ी और घर के बीच में से होकर ही श्री विट्ठल मंदिर को जाने का रास्ता था। फुलवाड़ी के चारों ओर से काँटे लगे थे, ताकि कोई जानवर भीतर न जा सके, पर तुकाराम जी की भैंस ने उन काँटों की परवाह न कर उस दिन फुलवाड़ी में प्रवेश किया और मंबाजी बुआ की फुलवाड़ी में लगे कुछ फूलों को कुचल डाला, कुछ को खा डाला। जब उसे फुलवाड़ी से भगाने के लिए हाँका गया तो उसके भागने से फुलवाड़ी के किनारे लगे काँटे इधर-उधर फैल गए।

एकादशी का दिन था। रात को कीर्तन होने वाला था और उसी मार्ग से कीर्तन में भाग लेने के लिए भक्त जन आने वाले थे। यह देख तुकाराम स्वयं रास्ते से काँटे हटाने लगे, ताकि किसी भक्त के पैर में काँटे न चुभें और उन्हें कोई कष्ट न हो। वह रास्ता साफ कर ही रहे थे तभी मंबाजी बुआ आ पहुँचे। उन्हें किसी ने भैंस के द्वारा किए गए नुकसान की खबर पहुँचा दी थी। इसलिए वे दौड़ते हुए वहाँ आए थे। फुलवाड़ी की दशा देखकर क्रोध के मारे वे जल उठे।

उन्होंने देखा फुलवाड़ी के कई पेड़ों को भैंस ने कुचल दिया है। क्रोध से भरे हुए मंबाजी ने वहीं से एक काँटों से भरा डंडा उठाया और उसी से तुकाराम जी की पीठ पर मारना शुरू कर दिया। काँटे के डंडे से तुकाराम की खुली पीठ पर प्रहार और मुख से गालियाँ दोनों एक साथ चलने लगे,

पर तुकाराम जी शांतिपूर्वक वहीं खड़े रहे। उनकी पीठ पर कई जगह से लहू बहने लगा। तब जाकर मंबाजी का क्रोध शांत हुआ और वे अपने घर चले गए।

इधर तुकाराम जी महाराज चुपचाप विट्ठल मंदिर में आए और अपने मन की बातें उमंग के रूप में श्री विट्ठल भगवान को सुनाने लगे।

वे कहने लगे—"हे भगवान, हे विठोबा! चाहे कुछ भी तकलीफ मेरी जान पर आ पड़े, पर तेरे चरणों को मैं छोड़ूँगा नहीं, छोड़ूँगा नहीं, छोड़ूँगा नहीं। चाहे इस देह को कोई शस्त्र से काटकर सौ-सौ टुकड़े ही क्यों न कर दे, पर मैं डरूँगा नहीं; क्योंकि इस तुकाराम ने अपनी बुद्धि पहले ही से सावधान कर रखी है। इस तुकाराम ने अपना सब कुछ तुझे ही अर्पित कर दिया है। मेरा मन, बुद्धि, आत्मा, शरीर सब तेरा ही तो है। फिर मेरा सम्मान या अपमान क्या? सब कुछ तेरा ही तो है।"

फिर वे आगे बोले—"हे विठोबा! आपने जो कुछ किया, वह अच्छा ही किया। मेरी क्षमा की सीमा देखने के लिए ही तो तूने मुझे काँटों से मरवाया। गालियों की तो कोई मर्यादा ही न रही। कई प्रकार से मेरी फजीहत हुई, पर यह बहुत अच्छा हुआ कि क्रोध के हाथ से मुझे छुड़वा लिया। इतनी फजीहत होने के बाद भी मेरे मन में क्रोध न आना, यह तेरे कारण ही तो संभव हो सका। इसी का नाम तो क्षमा है, साधुता है, इससे मेरे सभी दुःख दूर हो गए। ऊपर से मुझे आनंद इस बात का है कि मैं तेरी कृपा से क्रोध का शिकार होने से भी बच गया। अहा! यह तेरी कैसी लीला है। हे प्रभु! आपको बारंबार प्रणाम है।"

इस प्रकार उमंग के रूप में भगवान को अपनी बातें कहते हुए तुकाराम जी विट्ठल भगवान की प्रतिमा के समक्ष नतमस्तक हो गए। उन्होंने अपने मुख से मंबाजी के लिए कोई कठोर शब्द नहीं बोले—उलटे उन्होंने मंबाजी से ही क्षमा-याचना की और उन्हें आदरसहित विट्ठल मंदिर में आयोजित कीर्तन में बुला लाए।

सभी लोग देर रात्रि तक कीर्तन में सराबोर हो भगवत्प्रेम का रसास्वादन करते रहे। धन्य है संत तुकाराम जी की साधुता, उनकी भगवद्भक्ति, उनकी क्षमा-भावना और सहिष्णुता। सचमुच महान संत ऐसे ही होते हैं। ❑

कौआ गौरैया से बोला—"अरी मूर्ख गौरैया! क्या तू दिनभर ऐसे ही तिनके चुनने में लगी रहेगी? भला यह भी कोई जीवन है, न मौज न मस्ती, बस, दिनभर बेकार का काम।" गौरैया कौए की बातें सुनकर भी अपने काम में लगी रही।

कुछ दिनों बाद बरसात का मौसम आरंभ हुआ तब गौरैया अपने बच्चों सहित घोंसले में छिप गई; जबकि कौआ इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा। शाम को कौआ प्रायश्चित भरे स्वर में गौरैया से बोला—"बहन! मुझे माफ करना। आज तुम्हें घोंसले में सुरक्षित देखकर मुझे ज्ञात हुआ कि मेहनत का फल सदा मीठा होता है।"

आत्मिक प्रगति और सत्संग की महिमा

हर धर्म एवं आध्यात्मिक परंपरा में सत्संग की महिमा का गान किया गया है। एक प्रारंभिक साधक के जीवन में तो यह सबसे महत्त्वपूर्ण कारक रहता है। जिस संशय एवं अज्ञान की प्रारंभिक अवस्था में साधक भटक रहा होता है, सत्संग उसमें श्रद्धा एवं निष्ठा के बीज बोकर उसके जीवन को दिशा देता है।

एक ओर जहाँ यह जीवन के स्वरूप का बोध करता है, वहीं जीवन को आक्रांत कर रहे भवरोग के जीर्ण विकार की रामबाण औषधि के रूप में भी अपना कार्य करता है। सत्संग के दो प्रत्यक्ष आध्यात्मिक लाभ रहते हैं—एक है ईश्वर के प्रति व्याकुलता, अनुराग, प्रेम एवं भक्ति और दूसरा है, विवेक-वैराग्य से परिपूर्ण दृष्टि का जागरण। इन्हीं के प्रकाश में यह बोध हो पाता है कि संसार में क्या सही है व क्या गलत, क्या ग्रहण योग्य है व क्या त्याज्य।

इनके साथ नश्वर जगत् की क्षणभंगुरता का बोध स्वाध्याय के प्रकाश में होता रहता है और एक कलाकार की भाँति जीवन जीने का मार्ग भी प्रशस्त होता है। सत्संग प्रभावी हो, इसके लिए आवश्यक है कि प्रारंभिक अवस्था में मूढ़ एवं नकारात्मक लोगों की संगत से दूर ही रहें।

संस्कृत में कहावत प्रख्यात है कि स्वर्ग में भी मूर्खों की संगत से तो भला है पर्वत एवं दुर्गम जंगल में वनवासियों के बीच विचरण करना। इसलिए सही संग-साथ न मिल पाने की स्थिति में 'बुरी संगत से अकेला भला', एक आदर्श सूत्र रहता है। सामान्य इनसान की फितरत रहती है कि वे अकेले नहीं रह पाते।

अपने अकेलेपन को भरने के लिए किसी भी तरह की संगत से जुड़ जाते हैं और प्रायः कई तरह की समस्याओं व संकट में उलझ जाते हैं; क्योंकि कुसंग का दूषित एवं नकारात्मक प्रभाव साधना के बीजांकुर को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है और जीवन में आगे बढ़ने से रोकता है। इसलिए सबसे पहले अपनी रक्षा करें, अपना कल्याण करें।

गीता में भी **उद्धरेदात्मनात्मानं** कहकर आत्मकल्याण के लिए सजग एवं सचेष्ट रहने की बात कही गई है, लेकिन संसार में अधिकांश व्यक्ति अपनी सुध लिए बिना दुनिया को सुधारने व दूसरों को ठीक करने का बीड़ा उठाए घूमते-फिरते हैं और ऐसा न होने पर गहरा मलाल पाले रहते हैं। समाज में ऐसे परउपदेशक एवं सुधारकों की कमी नहीं, जो स्वयं का अभीष्ट परिष्कार किए बिना दूसरों को उत्कर्ष का ज्ञान बाँटते रहते हैं।

प्रारंभिक अवस्था में संग-साथ को लेकर विशेष सावधानी रखनी पड़ती है, कारण कि तब साधक का भाव बहुत कोमल होता है। जब विषय-भोगों का आकर्षण प्रबल होता है, तो प्रलोभन का हलका-सा झोंका चित्त को विक्षुब्ध कर विचलित कर देता है। चित्त के संस्कार जब उबाल पर होते हैं, तो ऐसे में अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता होती है।

जिन्हें हम आज सिद्ध साधक एवं आध्यात्मिक महापुरुषों के रूप में पूजते हैं, अनुसरण करते हैं वे भी कभी इसी प्रारंभिक अवस्था से होकर गुजरे थे। उन्होंने लापरवाही नहीं की थी और संयम, सहिष्णुता

तथा तप की अनगिनत परीक्षाओं को पार करते हुए यह अवस्था अर्जित की थी।

जबकि लापरवाह साधक असावधानी के कारण राह में ही भटककर नष्ट-भ्रष्ट होते रहते हैं। एक बार कुछ लोग नदी के किनारे बैठे थे, नदी में बाढ़ आई थी। किनारे से इन लोगों को उफनती नदी में काला कंबल बहता हुआ दिखा। एक व्यक्ति इसे लेने के लिए कूद पड़ा। इसके पास पहुँचा तो इसको पकड़ने की कोशिश की।

किनारे पर बैठे लोगों ने देखा कि यह व्यक्ति तो काले कंबल के साथ ही बहता जा रहा है और बचाने के लिए गुहार लगा रहा है। किनारे पर लोगों ने उसे कहा कि वह उसे छोड़ दे और वापस आ जाए। तब वह बोला—"जिसे मैं कंबल समझ रहा था, वह भालू निकला और अब वह मुझे जकड़ चुका है, मैं उसके शिकंजे से बाहर नहीं निकल पा रहा।"

ऐसा ही कुछ संसार के विषय-भोगों एवं प्रलोभनों का मायावी शिकंजा होता है, जिनकी गिरफ्त में असावधान पथिक दुर्घटनाग्रस्त होते रहते हैं और इनसे बचने के लिए साधक को पग-पग पर जूझना पड़ता है। साधना के मार्ग में जहाँ एक ओर सावधान रहने की आवश्यकता रहती है तो वहीं दूसरी ओर अपने को बड़ा साधक मानने की भूल से भी बचना होता है।

स्वयं को दूसरों से अधिक पवित्र, बड़ा शिष्य-साधक, गुरुभक्त व सौभाग्यशाली आदि मानने का अहं अध्यात्म पथ में बाधक बनता है, जो एक ओर श्रेष्ठता का दंभ भरता है, तो दूसरी ओर लापरवाही का कारण भी बनता है। ऐसे में वाणी-व्यवहार से दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचती रहती है, जो एक ओर अपनी मानसिक अशांति-असंतोष का कारण बनते हैं तो वहीं परिवार-समाज में कलह-कलेश का वातावरण खड़ा करते हैं।

अतः व्यावहारिक सूत्र है कि प्रलोभनों व नकारात्मक लोगों से दूर ही रहें। ईश्वर का रूप मानते हुए उन्हें पूरा सम्मान दें व अपनी क्षमता को आँकते हुए उनसे व्यवहार रखें। अपनी प्रारंभिक अवस्था में एक छोटी पौध के रूप में एक पेड़ एक बकरी तक को नहीं सँभाल सकता, लेकिन जब यही पेड़ बड़ा बन जाता है, तो हाथी को भी इसमें बाँधा जा सकता है।

इसी तरह साधक जब तक पर्याप्त रूप से सुदृढ़ न हो जाए, तब तक उसे विशेष संरक्षण की आवश्यकता रहती है। इसके साथ हमेशा विवेक को जाग्रत रखें। गहन आत्मविश्लेषण करते रहें। अपनी आंतरिक अवस्था का ईमानदार मूल्यांकन करते हुए, इसे सुदृढ़ करते रहें। सदैव आत्मचिंतन करते रहें व ईश्वर पर आश्रित रहें।

जैसे कंगारू का बच्चा खतरा आने पर माँ की गोद में छिप जाता है और बंदर का बच्चा माँ की छाती में चिपट जाता है—ऐसे ही साधक अपने गुरु व इष्ट के शरणागत रहता है और अपने साधनात्मक पुरुषार्थ को भी धार देता रहता है। निस्संदेह रूप में जब चारों ओर बुराई, दोष-दुर्गुण व लोभ आदि का बोलबाला हो, तो निराशावादी व संशयवादी होने का खतरा बढ़ जाता है।

संयोग से अच्छे व पावन लोग भी इस धरती पर हैं, उनकी खोज करें, उनकी संगत का लाभ लें, ताकि चित्त पर संशय और निराशा के प्रतिकूल भाव टिकने न पाएँ। अच्छे लोगों के साथ आध्यात्मिक चर्चा करते रहें व महापुरुषों का सत्संग करें। इसके साथ दो अतियों से सावधान रहें। अपने आप में गुमसुम, नकारात्मक अंतर्मुखता से बचें।

साथ ही किसी व्यसन या दिवास्वप्न में निमग्न न रहें या फिर दूसरों की निंदा-चुगली, प्रपंच में अपना बहुमूल्य समय व जीवन बरबाद न करें। श्रेष्ठ साधकों का संग दोनों ही अतियों से बचाता है व आत्मिक प्रगति के पथ पर प्रेरित करता है। आध्यात्मिक महापुरुषों से भी मिलें, तो उनके पीछे दिव्य परमात्मा को देखें।

उनके व्यक्तित्व को शरीर तक सीमित न रखें, मोह-आसक्ति न पालें। उन्हें तत्त्व से देखने व समझने का प्रयास करें। अपनी गुरुसत्ता को ईश्वर का प्रतीक-प्रतिनिधि मानकर आराधना करें।

ऐसे ही हर व्यक्ति, रिश्ते, नाते में उनके अंश को देखने का अभ्यास करें। भौतिक या शारीरिक लगाव के बजाय ईश्वरीय भाव के साथ पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों व कर्त्तव्यों को निभाएँ। प्रकारांतर में यही भाव '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' के रूप में परिपक्व होकर आत्मिक प्रगति का ठोस आधार बनता है और व्यक्ति जीवन के विषम प्रवाह के बीच भी अविचल भाव के साथ बढ़ता हुआ आध्यात्मिक पूर्णता की मंजिल की ओर गतिशील रहता है। ❑

***

एक संत भ्रमण पर निकले हुए थे। उन्हें मार्ग में एक राजा मिला, जो पड़ोसी राज्य पर हमला करने के लिए निकला हुआ था। संत को देखकर उसने उन्हें प्रणाम किया और बोला—"महाराज! मैं चक्रवर्ती सम्राट हूँ। मेरे पास अपार धन-दौलत है और आज मैं उसे और बढ़ाने के लिए दूसरे राज्य पर आक्रमण करने निकला हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दें।" संत धीरे से हँसे और उसके हाथ पर एक रुपये का सिक्का रख दिया।

राजा को आश्चर्य हुआ। वह बोला—"महाराज! आपने शायद सुना नहीं कि मैं बड़ा धनवान हूँ, मुझे इस एक रुपये की आवश्यकता नहीं है।"

संत बोले—"बेटा! यही सुनकर मैंने यह रुपया तुझे दिया। मुझे यह मुद्रा पड़ी मिली थी और मैंने सोचा था कि इसे सबसे दरिद्र व्यक्ति को दूँगा। आज तुझसे मिलकर मुझे लगा कि सबसे दरिद्र यदि कोई है तो वो तू ही है, जो अपार धन-संपदा होते हुए भी दूसरों का घर लूटने चला है।"

संत की बात सुनते ही राजा का सिर शरम से झुक गया और उसने जीवन की राह बदलने का संकल्प लिया। जीवन में सबसे बड़ा धन संतोष ही है, जिसके पास संतोष है, उसे फिर अन्य आकर्षण विचलित नहीं करते।

***

अपना उद्धार स्वयं करो

बारह वर्षों की घनघोर तपस्या व ध्यान-साधना के फलस्वरूप वर्धमान महावीर को केवल ज्ञान (विशुद्धज्ञान) की परम उपलब्धि हुई थी। 'केवल ज्ञान' यह महापुरुषों की वह अवस्था है, जब उनके लिए ज्ञान से भिन्न कुछ नहीं रह जाता है, केवल ज्ञान ही रह जाता है।

जैसे वसंत ऋतु में वृक्षों से पुराने पल्लव स्वयमेव झरते जाते हैं, गिरते जाते हैं, टूटते जाते हैं और वृक्षों की डालियों में नए पल्लव, नए रंग-बिरंगे पुष्प उग आते हैं वैसे ही केवल ज्ञान, निर्वाण, कैवल्य, आत्मसाक्षात्कार की अवस्था में साधक के मन से राग-द्वेष, लोभ-मोह, आसक्ति आदि सभी विकार मिट जाते हैं और साधक के हृदय में ज्ञान का अमृत अरुणोदय होता है और साधक का आत्मलोक ज्ञान के अमृत प्रकाश से जगमगा उठता है।

12 वर्षों की लंबी तपस्या व ध्यान-साधना के फलस्वरूप महावीर का अंतस् भी केवल ज्ञान से जगमगा उठा था। वे ज्ञानरूप हो गए। उनके लिए तब कुछ भी ज्ञेय नहीं रहा। 'मैं ज्ञाता हूँ' यह भान भी उनके लिए शेष नहीं रह गया। केवल और केवल ज्ञान ही रह गया। महावीर ज्ञानरूप हो गए, सत्यरूप हो गए, प्रेमरूप हो गए, आनंदरूप हो गए।

उनके रोम-रोम से वह दिव्य ज्ञान, प्रेम व सत्य स्वतः प्रवाहित होने लगा। उनके उपदेशों से उनके ज्ञान, प्रेम व सत्य की सुगंध चहुँओर फैलने लगी और वातावरण व जनमानस को सुगंधित करती गई, आप्लावित करती गई। ज्ञान की उसी भावदशा में भगवान महावीर मध्यमा नगरी पहुँचे और वहाँ पर महासेन नामक एक उद्यान में ठहरे। उनके आगमन की चर्चा सुगंध के समान सर्वत्र फैल गई।

हजारों नर-नारी उनके दर्शन व उपदेश पाने को वहाँ एकत्रित हुए। भगवान महावीर ने मिथ्या धारणाओं में भटकती जनता के समक्ष उस महासत्य को प्रकट किया, जिसे उन्होंने कठिन तपस्या व ध्यान-साधना के द्वारा जाना था।

उन्होंने अपने अमृत उपदेश में कहा कि अपना उद्धार स्वयं करो। आत्मोद्धार के लिए आध्यात्मिक जीवनचर्या आवश्यक है। आत्मोद्धार के लिए न तो नारीत्व बाधक है और न ही पुरुषत्व साधक है। आत्मोद्धार के लिए पवित्र जीवनचर्या, संयम और सम्यक ज्ञान आवश्यक है। जीवन में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह का होना आवश्यक है। साथ ही प्राणिमात्र के लिए सेवा, सहकार व प्रेम की भावना का होना भी आवश्यक है।

उन्होंने आगे कहा—"तुम्हारे सुख-दुःख के लिए कोई और नहीं, बल्कि तुम्हारे कर्म ही जिम्मेदार हैं। जब तुम अच्छे या शुभ कर्म के रूप में अच्छे कर्मबीज बोते हो तो तुम्हें सुख प्राप्त होता है और जब तुम बुरे कर्म के बीज बोते हो तो दुःख प्राप्त होता है। मनुष्य अपना जीवन ईश्वर की दया व क्रोध पर अवलंबित मानकर अपने को आलसी और परावलंबी बना बैठा है, पर सच तो यह है कि तुम्हारे सुख-दुःख तुम्हारे ही कर्मों पर अवलंबित हैं, ईश्वर की दया या क्रोध पर नहीं। तुम जो भी हो, जैसे भी हो, तुम अपने अच्छे या बुरे कर्मों के कारण ही हो।"

वे फिर बोले—''इसलिए यदि सुखी रहना चाहते हो तो आलस्य, प्रमाद का त्याग कर श्रम करो, संयम करो, पुरुषार्थ करो, शुभ और अच्छे कर्म करो पर हाँ, अच्छे कर्म भी आसक्ति से रहित होकर ही करो जिससे कि तुम किसी कर्मबंधन में नहीं बँधो और मोक्ष प्राप्त कर आनंद की अनुभूति कर सको। तुम्हारा सुखी या दु:खी होना ईश्वर के ऊपर नहीं, स्वयं तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है; क्योंकि ईश्वर मनुष्य स्वयं है। तुम्हें 'अहं ब्रह्मास्मि' 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस वाक्य को आत्मसात् कर उसे अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाना चाहिए। तुम सब के लिए और मनुष्य मात्र के लिए मेरा यही संदेश है कि तुम अपनी आत्मशक्ति को देखो। तुम अपने महान स्वरूप को पहचानो और अपने महान परम रूप की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करो। तुम अपना उद्धार स्वयं करो।''

भगवान महावीर ने कहा—''सत्य ही भगवान है। सत्य चंद्र से भी अधिक सौम्य और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी है। इसलिए जीवन में सत्य की उपासना करो। सत्य की आराधना करो। सत्य की अभ्यर्थना करो। सत्य का आचरण करो। आध्यात्मिक जीवनचर्या का पालन करते हुए अपने ईश्वरीय रूप को पहचानो, अपनी शक्ति को पहचानो और अपने कर्त्तव्य का पालन करो। इसी से तुम्हें सच्चा सुख, शांति और आनंद प्राप्त हो सकेगा।''

भगवान महावीर के अमृत उपदेश को पाकर वहाँ उपस्थित सभी नर-नारी अभिभूत हुए बिना नहीं रह सके और अपने जीवन को तदनुरूप गढ़ने की मनोभूमि बनाने लगे व साथ ही उसी अनुरूप जीने को संकल्पित भी हुए।

❑

आँधी ने शीतल बयार से कहा—''अरी बहन! यह तुम क्या धीरे-धीरे बहती हो। मुझे देखो! मैं जब आवेग के साथ चलती हूँ तो पेड़-पौधे काँपते हैं, बड़े-बड़े भवन थरथराते हैं, सब अपने बचाव में इधर-उधर भागते हैं। जिंदगी ऐसी जीनी चाहिए, जिसका सब लोहा मानें और हमसे डरें।''

शीतल बयार ने विनम्रता से उत्तर दिया—''आँधी दीदी! मुझे तो इस धीमी चाल में ही आनंद आता है। इसमें किसी को कष्ट नहीं होता और मैं जिसको छूकर जाती हूँ, उसके चेहरे पर एक शांति की रेखा छोड़ती हुई जाती हूँ। दूसरों के सुख में ही मेरे जीवन का सुख है।''

जीवन भी एक शीतल, मंद बयार की तरह हो तो आत्मिक शांति और आंतरिक उल्लास लाता है। आवेगपूर्ण जीवन आँधी की तरह स्वयं और दूसरों के कष्ट का कारण बनता है।

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा-11

बालसुलभ चेष्टाएँ

व्यस्त कार्यक्रम से छूटकर जब भी वे अवसर पाते तो बालकों के साथ खेलने-खिलाने में, हँसने-हँसाने में ऐसे तन्मय हो जाते थे मानो वे मात्र बालक ही हों।

बड़ी आयु में बचपन का आनंद लेने के इन क्षणों को वे सर्वोत्तम मनोरंजन मानते थे और कहते थे कि अभागे लोग घर में इतने उत्कृष्ट स्तर का मनोरंजन साधन होते हुए भी बालकों को छोड़ न जाने कहाँ सिनेमा की गंदी दुर्गंध सूँघने चले जाते हैं।

गृह-व्यवस्था के छोटे-मोटे कार्यों को अक्सर वे स्वयं करने लगते और बालकों समेत हम सबको साथ लगा लेते और बताते कि छोटे दिखने वाले कार्यों को भी यदि मनोयोग-कुशलता से किया जाए तो वो कितने सुंदर बन पड़ते हैं तथा कर्त्ता की योग्यता का कैसा विकास होता है।

झाड़ू लगाने से कपड़े धोने तक और भोजन बनाने से लेकर टूटी चीजों की मरम्मत करने तक के कामों को सुंदरतापूर्वक कैसे किया जा सकता है, बताने-समझाने के लिए वे हम सबको साथ लेकर जब भी सुविधा होती, जुट जाते।

मैं अक्सर झगड़ती और कहती—"आप इन छोटी बातों के लिए अपना मूल्यवान समय क्यों बिगाड़ते हैं। मुझे शरम लगती है कोई बाहर का देखेगा तो यही कहेगा कि इनकी गृहिणी आलसी और बेशऊर है अन्यथा घर-गृहस्थी के काम स्वयं क्यों करते?"

वे हँस पड़ते और कहते—"इसमें हर्ज ही क्या है, जो देखेगा सो सीखेगा कि मरदों को भी गृहस्थी चलाना आना चाहिए। इससे मरदों की पराधीनता दूर होगी और स्त्रियों को लगेगा कि वे ही छोटे काम करने के लिए बाधित नहीं हैं।"

इसी प्रकार हँसी-मजाक चलती रहती और हम सब मिलकर गृहस्थी का काम निपटाते तो न केवल व्यवस्था संबंधी अनेक जानकारियों भरा प्रशिक्षण मिलता, वरन आनंद भी खूब आता। घर-परिवार की हर चीज सुंदर, सुसज्जित और सुव्यवस्थित रहे तो छोटे से किराये के घर भी बढ़िया होटलों से भी अधिक सुविधाजनक रह सकते हैं।

इस शिक्षा को अपने परिवार के प्रत्येक व्यक्ति ने पाया है। घर की पाठशाला में जीवन-व्यवस्था के अनेक गुण जिन बालकों ने सीखे हैं, आशा की जानी चाहिए कि वे भी अपनी गृहस्थी ऐसी ही आनंदमय बनाकर शांति से जिएँगे और साथियों को संतोषपूर्वक जीने देंगे। ❑

गुरुदीक्षा अर्थात गुरु के रूप में एक ऐसी सत्ता को संपूर्ण समर्पण जो उत्कृष्टताओं का, सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय हो—जिसके पदचिह्नों पर चलकर, जिसके द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन को अपनाकर अपना जीवन भी वैसा ही श्रेष्ठतम व सार्थक बनाया जा सके।

—परमपूज्य गुरुदेव

मोक्ष—भारतीय संस्कृति की एक अभूतपूर्व अवधारणा

भारतीय संस्कृति में जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है। यही भारतीय परंपरा में जीवन का चरम पुरुषार्थ है। मोक्ष भारतीय दर्शन एवं आध्यात्मिक चिंतन की एक विशिष्ट एवं अभूतपूर्व अवधारणा है। यह परम एकत्व की अवस्था का नाम है, जो आत्मज्ञान, ईश्वरप्राप्ति, आत्मसाक्षात्कार, मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य जैसी उपलब्धि के रूप में भी परिभाषित होता है एवं जो मानवीय संभावनाओं की चरम एवं परम अवस्था है।

ऋषियों के अनुसार—अपनी अभिव्यक्ति हेतु जन्म-जन्मांतर की कोशिशों के बाद जीवात्मा विकास की पूर्णता को परम एकत्व—मोक्ष के रूप में प्राप्त करती है। गीताकार के शब्दों में—

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

—*6/45*

अर्थात अनेक जन्मों से अंत:करण की शुद्धि रूपी सिद्धि को प्राप्त हुआ योगी परम गति को प्राप्त होता है। वैदिक दर्शन में इसे मानव जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। मुक्ति वह अवस्था है, जिसमें मनुष्य सब वासनाओं को त्यागकर पूर्णकाम हो जाता है और सब प्रकार के कष्टों से दूर विशुद्ध दिव्य आनंद के महासमुद्र में हिलोरें लेने लगता है।

इस मुक्ति के सुख का भोग इंद्रियों द्वारा नहीं होता। आत्मा अपनी शक्तियों के सहारे उस परमानंद का भोग करती है। अविनाशी, परमरक्षक—जिस परमात्मदेव में सब जड़ और चेतन देव निवास करते हैं, वेद की ऋचाएँ उसी का बखान करती हैं। जिसने उसे नहीं जाना, वह वेद की ऋचाओं से क्या करेगा।

जो उसे जानते हैं, वे ही आनंदपूर्वक रहते हैं। अथर्ववेद के अनुसार—वे परमात्मदेव कामनाओं से रहित हैं, धीर हैं, अमृत हैं, स्वयंभू हैं, आनंद से तृप्त हैं, उनमें कहीं से भी कोई कमी नहीं है, उन्हें जान लेने वाला मृत्यु से नहीं डरता, वे सर्वव्यापक हैं, धीर हैं, अजर हैं और अमर हैं।

यजुर्वेद में ऋषि कहते हैं—मैंने इस परमात्मा देवस्वरूप पुरुष को जान लिया है, जो महान है, सूर्य जैसा तेजस्वी है और अंधकार से परे है। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु को जीत सकता है। अमरता की ओर जाने का और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

ऋग्वेद के अनुसार—उस प्रसाद को वो न प्राप्त करेगा, जो उस जगत्पिता को नहीं जानता। मुक्ति का साधन ब्रह्म साक्षात्कार है। यह साक्षात्कार बाह्य इंद्रियों द्वारा नहीं किया जा सकता। वह तो अंत:करण में आत्मा की परमात्मा से एकात्मता द्वारा किया जाता है।

परमात्मदर्शन सद्विचार, सतत व्यवहार और श्रद्धा से ही संभव है। व्यक्ति परोक्ष तथा प्रत्यक्ष दुष्कृत्यों से हटकर ही मोक्ष का भागी बनता है। अहिंसा आदि धर्माचरण तथा योगाभ्यास, ध्यान उपासना आदि मोक्ष के आवश्यक साधन हैं।

उपनिषदों में मोक्ष संबंधी विचारों की परिपक्वता देखने को मिलती है। मुंडक उपनिषद् में कहा गया है कि जो परब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्मरूप हो जाता है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि यहाँ से रवाना होने पर मैं ब्रह्म में, जो मेरी आत्मा है विलीन हो जाऊँगा।

कौषीतकी उपनिषद् का कथन है कि जब व्यक्ति सभी इच्छाएँ छोड़ देता है, उन्हें हृदय से निकाल देता है, तब एक मर्त्यशील व्यक्ति अमर हो जाता है। वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है कि उसके प्राण कहीं नहीं जाते। ब्रह्म होने के कारण वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। मोक्ष परमानंद की स्थिति होती है। यह तो सत्य, प्रकाश तथा अमरत्व का लोक होता है।

भारतीय दर्शन में मोक्ष को मूल्य के रूप में स्थान मिला हुआ है। इसकी यही विशेषता इसे पश्चिमी तत्त्वचिंतन से विलग करती है। पश्चिमी चिंतन के अनुसार—मानव जीवन का लक्ष्य नैतिक या धार्मिक जीवन तथा मानवता की सेवा है, परंतु भारतीय ऋषियों के अनुसार—केवल साधना मूल्य है, साध्य मूल्य मोक्ष है।

न्यायदर्शन के अनुसार—यह दु:खों की आत्यांतिक निवृत्ति है। वैशेषिक सूत्र के अनुसार—कर्मों के अंत हो जाने पर आत्मा का शरीर से संबंध समाप्त हो जाता है। जीवन-मरण के चक्र की यही समाप्ति मोक्ष है।

सांख्य के अनुसार—मुक्ति के दो भेद हैं—जीवन मुक्ति, इसमें पुरुष को यह दृढ़ ज्ञान हो जाता है कि मैं स्वभावत: निष्क्रिय हूँ, अकर्त्ता हूँ, सेवारहित हूँ। विदेह मुक्ति में जब भोग से प्रारब्ध कर्म भी समाप्त हो जाते हैं, तो पुरुष इस शरीर को छोड़ देता है और नित्य तथा पूर्ण कैवल्य को प्राप्त कर लेता है।

पतंजलि ने अपने योगसूत्र में मुक्ति की परिभाषा देते हुए कहा है कि बुद्धि सत्त्व तथा पुरुष की जो शुद्धि एवं सादृश्य है, वही कैवल्य है। मीमांसकों के अनुसार—आत्मा के प्रपंच संबंध के विलय का नाम ही मोक्ष है।

अद्वैत वेदांत के आचार्य शंकर के अनुसार—यह परमार्थ है, कूटस्थ नित्य है, आकाश के समान सर्वव्यापी है, सभी विकारों से शून्य है, नित्य तृप्त है, अवयवों से रहित है, स्वभाव से स्वयं प्रकाशित है।

यह ऐसी स्थिति है, जहाँ पाप और पुण्य अपने फल सहित त्रिकाल में नहीं पहुँच सकते। आचार्य रामानुज के अनुसार—मोक्ष में वैयक्तिक दृष्टिकोण से मुक्ति तथा दिव्यदृष्टि और दिव्य आनंद की प्राप्ति होती है।

उस स्थिति में जीव स्वयं नहीं, बल्कि केवल उसका पृथकत्व भाव ही समाप्त होता है। आचार्य निंबार्क के भेदाभेद वेदांत के अनुसार—मोक्ष का अर्थ वैयक्तिकता की समाप्ति नहीं है, बल्कि वैयक्तिकता का उस सीमा तक विस्तार है, जहाँ मेरे-तेरे की भावना समाप्त हो जाती है।

मध्वाचार्य के अनुसार—मुक्ति, पूर्ण आत्माभिव्यक्ति, आत्मप्रकाशन और आत्मसाक्षात्कार, संक्षेप में कहें तो आत्मा की सभी क्षमताओं एवं शक्तियों का प्रकटीकरण हैं। भगवान बुद्ध के अनुसार—निर्वाण मोक्ष उच्छेद है, परंतु यह उच्छेद साधक का नहीं, बल्कि लालसा, तृष्णा, जिजीविषा का तथा उसकी तीनों जड़ों (राग, जीवन धारण की इच्छा और अज्ञान) का है।

जैन दर्शन के अनुसार—पहले से संबद्ध कर्मों से जीवन को छुड़ाना ही निर्वाण कहलाता है। सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान व सम्यक चरित्र—तीनों ही मोक्ष के साधन हैं।

आधुनिक आध्यात्मिक चिंतकों में स्वामी विवेकानंद के अनुसार—आत्मा और ब्रह्म के तादात्म्य की अवस्था ही मोक्ष है। महात्मा गांधी के अनुसार—यह व्यक्तिगत अहं को सामाजिक अहं में मिला देना है।

स्वामी रामतीर्थ आत्मा और ब्रह्म को एक ही मानते हैं और कहते हैं कि आत्मज्ञान ही मोक्ष है। महर्षि रमण के शब्दों में—अहं ब्रह्मास्मि की प्रतीति होना मुक्ति है। श्री अरविंद मोक्ष को ऐसी स्वतंत्रता मानते हैं, जो अपने स्वामित्व को पाती है। परमपूज्य गुरुदेव मोक्ष के चिंतन में एक नई व्यापकता विकसित करते हैं।

ऐसी व्यापकता, जिसमें उपरोक्त सभी निष्कर्षों को अपना-अपना स्थान स्वभावत: मिल जाता है। उनके शब्दों में—अपने असंयम, असंतोष, अनाचरण से यदि छुटकारा प्राप्त कर लिया जाए तो समझना चाहिए कि अवांछनीयता से छुटकारा मिल गया। देवत्व की उत्कृष्ट, आदर्शवादिता व्यक्तित्व में समाविष्ट हो गई, तो इसी को मुक्ति समझा जा सकता है।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार—मुक्ति का शब्दार्थ है, बंधनमुक्त होना। बंधन तीन ही हैं—लोभ, मोह, अहंकार। इन्हीं को वासना, तृष्णा, संकीर्ण अहंता भी कहते हैं। ये ही वास्तविक बंधन हैं। इन लिप्सा-लालसाओं से जो स्वयं को मुक्त कर लेता है, समाज का एक विनम्र घटक बनकर सेवा-साधना में संलग्न रहता है उसी के बारे में यह समझना चाहिए कि जीवित रहते ही उसने मुक्ति प्राप्त कर ली।

जीवनमुक्त होने का तात्पर्य बंधनमुक्त होना ही है। इन बंधनों का कारण अज्ञान है। आंतरिक अज्ञानता के कारण व्यक्ति अपनी कामनाओं, वासनाओं की आँधी में उड़ते-फिरने को ही स्वतंत्रता समझे रहता है। मोह, माया, तृष्णा, अहंता, वासना-कामना की आकर्षक मादक मदिरा अंतश्चेतना को सदा लुभाती रहती है। शरीर और मन को रुचिकर इन मदिराओं और मादकताओं का त्याग ही मुक्ति है।

भवबंधन, मायापाश आदि के नाम से जिस तमिस्रा का अध्यात्म क्षेत्र में हेय वर्णन किया जाता है वह और कुछ नहीं मात्र विलास और स्वामित्व की तृष्णा भर है।

इस भार से हलका होते ही आत्मा विश्व आकाश में स्वच्छंद पक्षी की तरह विचरने का आनंद लेने लगती है। इसी को जीवनमुक्ति कहते हैं। इस तरह मुक्ति का वास्तविक संबंध अंतश्चेतना से ही है। आत्मचेतना में ही आत्म स्वातंत्र्य निहित है।

बिना आत्मचेतना के बाहरी स्वतंत्रताएँ बहुधा परतंत्रताओं का ही छद्म रूप धारण करती हैं। मुक्ति का एकमात्र उपाय यही है कि हम आत्मसत्ता की सत्यता को स्वीकारें, उसे यथार्थत: जानें, उसके प्रति अज्ञान भाव न पाले रहें।

जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप उसी केंद्रीय प्रकाश से निर्देशित-नियंत्रित हों, वासनाओं के अंधड़ आवेग से नहीं। तभी हम सर्वोच्च पुरुषार्थ मुक्ति के अधिकारी होंगे और यह कोई चमत्कार या रहस्य नहीं है।

यह तो जगत् और आत्मा दोनों का वास्तविक तत्त्व जानने तथा इस बोध को व्यक्तिगत चेतना की सहज स्थिति बना डालने की साधना है। बाह्य स्वतंत्रताएँ आंतरिक मुक्ति से गुँथी रहती हैं। जिस सीमा तक आंतरिक मुक्ति होगी, उसी सीमा तक बाह्य स्वतंत्रता भी होगी। यही मोक्ष है। ❑

किसी भक्त का यह आशा करना कि भगवान उसके इशारों पर नाचने के लिए सहमत हो जाएगा, आत्मप्रवंचना भर है। भक्त को ही भगवान के संकेतों पर कठपुतली की तरह नाचना पड़ता है। भक्त की इच्छाएँ भगवान पूरी नहीं करते, वरन भगवान की इच्छा पूरी करने के लिए भक्त को आत्मसमर्पण करना पड़ता है। बूँद को समुद्र में घुलना पड़ता है, समुद्र बूँद नहीं बनता। यही है उपासना का एकमात्र तत्त्वदर्शन।

—परमपूज्य गुरुदेव

►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄

बद्धावस्था से सिद्धावस्था की ओर

वेदांत दर्शन में जीवों के चार भेद किए गए हैं—बद्ध, मुमुक्षु, साधक और सिद्ध। जो जीव संसार के पाशों से बँधा हुआ है, जो जन्म-मृत्यु के भ्रमणचक्र में फँसा हुआ है, वह बद्ध कहलाता है।

बद्ध मनुष्य को यह ज्ञान ही नहीं होता कि वह संसार के पाशों से बँधा हुआ है। वह जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा हुआ है। वह तो इसे ही अपनी नियति मान दु:खों और कष्टों से भरा हुआ जीवन जीने को विवश होता है, मजबूर होता है।

उसे तो यह भी ज्ञान नहीं होता कि जिन सांसारिक सुखों को वह वास्तविक सुख मान बैठा है, वे क्षणिक हैं और अंतत: दु:खदायी भी। उसे यह भी पता नहीं होता कि कोई शाश्वत सुख भी है, जिसके समक्ष सारे भौतिक सुख, विषयगत सुख, सांसारिक सुख बड़े ही बौने, छोटे, तुच्छ और क्षणिक हैं।

वह दुर्लभ मनुष्य शरीर, मनुष्य जीवन पाकर भी पराधीन होता है, परतंत्र होता है। वह इंद्रियगत, विषयगत क्षणिक सुखों में डूबा, गुलामी भरा जीवन जीता हुआ, सदा शाश्वत सुख से वंचित होता है। वह अपने वास्तविक सत्-चित्-आनंदस्वरूप से अनभिज्ञ होता है। वह स्वयं को शरीर मात्र मानता है और तदनुरूप सोचता, विचारता और निकृष्ट जीवन जीता है और अंतत: अपने दुर्लभ मनुष्य जीवन को पाकर भी वह खाली हाथ ही रह जाता है।

जब ऐसे बद्ध जीव को, मनुष्य को, सांसारिक दु:खों की तीव्र आँच लगती है और चारों ओर से जल रहे वन के बीच में फँसे हुए हिरण की भाँति वह चारों ओर से दु:खों से घिर जाता है और उसे उससे बाहर निकल आने का कोई भी मार्ग दिखाई नहीं पड़ता, तब उसे यह भान होता है कि वह बद्ध है, वह पराधीन है, वह परतंत्र है वह गुलाम है और जो पराधीन है, परतंत्र है, गुलाम है उसे भला सुख क्यों और कैसे मिलेगा?

माया से आबद्ध वह बद्धजीव उससे निकल आने को आतुर होता है। वह माया की निद्रा से जागता है, पर निद्रा से जागने मात्र से उसकी बद्धदशा नष्ट तो नहीं हो जाती। क्यों? क्योंकि यदि उस मायारूपी निद्रा को दूर करने का कोई स्थायी उपाय उसके पास नहीं है तो वह फिर से उसी माया की निद्रा में जाने को, सोने को, जीने को विवश होगा पर हाँ, वह अपने पूर्व की उपस्थिति से तो अवश्य ही अच्छी स्थिति में होगा; क्योंकि अब वह कम-से-कम यह तो मानने लगा होगा कि वह बद्ध है, पराधीन है, परतंत्र है, माया के बंधन में है और दु:ख में है और जिसे वह अब तक सुख समझता रहा है वह सुख नहीं, वरन वह तो सुख की मृग-मरीचिका मात्र है।

अस्तु उसे अब इस स्थिति से बाहर निकल आने का, निकल भागने का कोई-न-कोई उपाय, मार्ग ढूँढ़ना पड़ेगा और जब वह यह मान लेता है कि मैं बद्ध हूँ और मुझे हर हाल में इससे मुक्त होना है और अपने वास्तविक 'अहं ब्रह्मास्मि' स्वरूप को पाना है और आनंदित होना है तब इसे पाने की उसमें तीव्र अभीप्सा होती है। तब मोक्ष पाने को उसमें तीव्र अभीप्सा जाग पड़ती है। तब वह बद्ध की स्थिति से आगे निकल उससे अच्छी स्थिति में होता है और मोक्ष पाने की इच्छा रखने के कारण वह मुमुक्षु कहलाता है।

तब उसके मन में सभी प्रकार के दुःखों और बंधनों से छुटकारा पाने और शाश्वत सुख को पाने की बुद्धि उदित होती है। ऐसा होते ही जिन बातों को वह अपनी बद्धावस्था में हितकर मानता था वे ही अब उसे अहितकर और दुःखकर जान पड़ती हैं। जिन विषयगत सुखों में वह रस लिया करता था, वे रस उसे अब फीके जान पड़ते हैं। उसे अब यह ज्ञान होता है कि सामान्य संसारी जीव जिन्हें सुख समझते हैं, वे अंत में दुःख ही हैं और मोक्ष चाहने वाले और परमपद पाने की चाहत रखने वाले जिन्हें सुख समझते हैं, उन्हें ही सांसारिक लोग दुःख मानते हैं।

इस स्थिति के विषय में ही भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि 'जो सभी प्राणियों के लिए रात्रि है, वही योगियों के लिए दिन है और जो योगियों के लिए रात्रि के समान है, वही सामान्य प्राणियों (मनुष्यों) के लिए दिन है।' वस्तुतः यह दृष्टि परिवर्तन है। यही वह आत्मदृष्टि है, जिससे देखने पर यह दुनिया भिन्न नजर आती है और तब वह मुमुक्षु जीव संसार में रहते हुए मोक्षदायक तत्त्वों का ही सेवन करने लगता है।

तब वह साधना के पथ पर चल पड़ता है। वह ज्ञान, कर्म, भक्ति का नित्य-निरंतर अभ्यास करता जाता है और अंततः साधना के परिणामस्वरूप जब वह पूरी तरह मुक्त दशा को प्राप्त कर लेता है, अपने सत्-चित्-आनंद रूप को पहचान लेता है और उसमें अवस्थित हो जाता है और जब यह जान लेता है, अनुभव कर लेता है कि 'मैं ही ब्रह्म हूँ' तब वह सिद्ध कहलाता है।

यह सिद्धावस्था ही समाधि की अवस्था है, मुक्ति की अवस्था है, मोक्ष की अवस्था है, निर्वाण की अवस्था है, कैवल्य की अवस्था है, आत्म-साक्षात्कार की अवस्था है। यह वह अवस्था है, जिसमें साधक सभी प्रकार के दुःखों और दुःखों को उत्पन्न करने वाले कारणों से भी मुक्त हो जाता है। वह सभी प्रकार के दुःखों-द्वंद्वों, विकारों और बंधनों से मुक्त होते ही अपनी आत्मा में परमानंद का अनुभव करने लगता है।

अपनी आत्मा में सतत ब्रह्म का चिंतन, ध्यान करते हुए उसकी चित्तवृत्तियाँ ब्रह्म के साथ ही एकाकार हो जाती हैं। सदा सचेतेंद्रिय होकर शांत मन से ब्रह्म में अपने चित्त को स्थिर किए रहने से साधक को सच्चिदानंद ब्रह्म के साथ अभिन्न, अभेद व अद्वैत अवस्था की अनुभूति होती है। उसे सदा ही ब्रह्मानंद रस का अविचल अनुभव होता रहता है। तब व्यावहारिक जगत् में भी सिद्धावस्था को प्राप्त उस साधक का व्यवहार बदला हुआ-सा नजर आता है। वह न किसी से द्वेष करता है और न किसी की आकांक्षा करता है। वह राग-द्वेषादि द्वंद्वों से रहित सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, वह संपूर्ण कर्मों में कर्त्तापन की भावना का त्याग कर एकमेव परमात्मा को ही कर्त्ता मानता है।

इस प्रकार अपने संपूर्ण कर्मों को परमात्मा को अर्पित करके वह आसक्ति को त्यागकर कर्म करता जाता है और संसार में रहते हुए वह संसार से वैसे ही लिप्त नहीं होता, आसक्त नहीं होता, जैसे जल में रहते हुए भी कमल जल से लिप्त नहीं होता। इस प्रकार वह सदा परम शांति, परमसुख और परमानंद की अनुभूति करता है और अंततः देहत्याग के बाद जन्म-मृत्यु के बंधन से सदा के लिए मुक्त होकर ब्रह्म के साथ ही एकाकार हो जाता है।

निस्संदेह सिद्धावस्था परमानंद की अवस्था है। अतः हमें भी अपने जीवन पर दृष्टिपात करते रहना चाहिए और ज्ञान, कर्म, भक्ति, संयम, सेवा, स्वाध्याय आदि साधनों का नित्य निरंतर अभ्यास करते हुए बद्धावस्था से सिद्धावस्था की ओर अग्रसर होते रहना चाहिए। इसी में सच्चा सुख, शाश्वत सुख है, आनंद है और इसी में मनुष्य जीवन की सार्थकता और सफलता भी है। अतः हम भी क्यों न बढ़ चलें बद्धावस्था से सिद्धावस्था की ओर। ❑

जीवन जीने का सर्वोत्तम मार्ग

बहुधा हम अपनी इच्छा पूरी नहीं होने के कारण दुःखी रहते हैं। हमारे मन में कई प्रकार की भौतिक इच्छाएँ बलवती रहती हैं। जब हमारी कोई इच्छा पूरी हो जाती है, तब हम बड़े प्रसन्न हो जाते हैं और जब हमारी कोई इच्छा पूरी नहीं हो पाती तो हम बड़े दुःखी होते हैं।

कभी-कभी तो व्यक्ति इतना हताश, निराश और उदास हो जाता है कि जीवन उसके लिए बोझ-सा बन जाता है। वह जीवन को बोझ समझ बस, ढोता फिरता है। कभी सम्मान पाकर वह हर्षित हो उठता है तो कभी अपमान मिलने पर अवसादग्रस्त हो जाता है।

जीवन में लाभ प्राप्त होने पर वह हर्षित हो उठता है और जीवन-व्यापार में, उद्योग में, व्यवसाय में हानि होते ही इतना निराश हो जाता है कि वह आत्महत्या तक करने का विचार करने लगता है। धन प्राप्त करने, सुख प्राप्त करने के लिए वह बुरे-से-बुरे कर्म करने को आतुर रहता है।

कुल मिलाकर उसका जीवन सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि द्वंद्वों में ही फँसा हुआ, उलझा हुआ रहता है, जिसके कारण वह जीवन में कभी भी वास्तविक सुख-शांति प्राप्त नहीं कर पाता। वह स्थायी सुख-शांति प्राप्त नहीं कर पाता।

तब हमारे मन में सहज ही कई प्रश्न आते हैं। ऐसा भला क्यों और कैसे होता है? क्या जीवन जीने का कोई ऐसा उपाय भी है, मार्ग भी है, जिस पर चलकर व्यक्ति स्थायी सुख-शांति प्राप्त कर सके? और यदि कोई मार्ग है तो वह कौन-सा है? ऐसे अनेक प्रश्न हमारे मन में उभर आते हैं।

जीवन से निराश एक ऐसा ही व्यक्ति इन्हीं प्रश्नों को लेकर एक तपस्वी के पास पहुँचा। वह संत वास्तव में बड़े तपस्वी थे, ज्ञानी थे। वह जंगल में एक कुटिया बनाकर रहते थे। जीवन से निराश वह व्यक्ति उनके पास पहुँचा और बोला—"मैं जीवन से निराश हो चुका हूँ। अब मैं गृहत्याग कर आपके साथ ही रहना चाहता हूँ। आप कृपा करके मुझे अपना शिष्य बना लीजिए।"

महात्मा ने उसकी इच्छानुसार उसे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया। महात्मा जी ने उसे गायत्री मंत्र की दीक्षा दी और कहा—"ब्राह्ममुहूर्त में उठकर उदीयमान सविता देव का अपने हृदय में ध्यान करते हुए नित्य गायत्री मंत्र का जप करो। शास्त्रों का स्वाध्याय करो।"

वह महात्मा जी के बताए अनुसार वैसा ही करने लगा। महात्मा जी ने उसे एक गाय भी दी और कहा—"वत्स! इसकी सेवा करो और दूध का सेवन करो।" वह नित्य संध्यावंदन करने लगा। साथ ही वह प्रतिदिन गाय को जंगल में ले जाकर चराता, दोनों समय उसका दूध पीता और नित्य गायत्री-उपासना और स्वाध्याय किया करता।

एक दिन वह महात्मा जी के पास गया और बोला—"गुरुदेव! आपकी कृपा से अब मैं बहुत आनंदित रहने लगा हूँ।" महात्मा ने पूछा—"वत्स! आनंद क्या है? आनंद से तुम्हारा क्या अभिप्राय है?" वह बोला—"मैं नित्य संध्यावंदन करता हूँ, स्वाध्याय करता हूँ, गाय चराता हूँ, खूब दूध पीता हूँ और सुखपूर्वक रहता हूँ।"

यह सुनकर महात्मा बोले—"ठीक है।" कुछ दिन बाद संयोग से एक दिन गाय कहीं गुम हो गई। अब उसे दूध पीने को नहीं मिलता था और उस चिंता में गायत्री मंत्र-जप करने में भी उसका मन नहीं लगता था। उसने घबराकर महात्मा जी से अपनी व्यथा सुनाई।

यह सुनकर महात्मा जी मुस्कराए और बोले—"यह भी ठीक है।" कुछ दिनों बाद वह गाय मिल गई। बस, फिर क्या था, उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वह बहुत खुश हुआ। उसे दूध मिलने लगा और भजन-ध्यान में मन लगने लगा। वह महात्मा जी से फिर मिला और अपनी सुखद स्थिति का बखान किया। उसकी बात सुनकर महात्मा जी बोले—"यह भी ठीक है।"

यह सुनकर वह शिष्य बड़ा अचरज में पड़ गया और बोला—"गुरुदेव! यह कैसी बात है? जब गाय गुम हो गई, तब भी आपने कहा ठीक है और अब गाय दोबारा मिल गई है, तब भी आपने कहा ठीक है।"

तब महात्मा जी बोले—"वत्स! जीवन जीने का यही सर्वोत्तम ढंग है। जैसी परिस्थिति हो, उसे ठीक समझो। सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान जीवन में आते रहेंगे, जाते रहेंगे। तुम अपने आप को उस रूप में ढाल लो, जिससे कि तुम हमेशा समत्व की स्थिति में रह सको। जो द्वंद्वों में समत्व की स्थिति में रहता है, वह सदा सुखी रहता है। जीवन में सुख और सफलता प्राप्ति का यही सर्वोत्तम मार्ग है।"

महात्मा जी ने कहा—"तुम नित्य गायत्री मंत्र का जप किया करो, ध्यान किया करो, स्वाध्याय किया करो, इससे तुम्हारी बुद्धि पवित्र होगी, मन की मलिनता दूर होगी और सद्ज्ञान की प्राप्ति होगी। सद्ज्ञानसंपन्न व्यक्ति ही समत्व की स्थिति में रहता है। जाओ, अब तुम घर लौट जाओ और अपने परिवार की, समाज की जिम्मेदारियों का कुशलतापूर्वक निर्वहन करो और प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करो।"

महात्मा जी के उपदेशानुसार, निर्देशानुसार वह व्यक्ति घर लौट आया और तदनुरूप जीवन जीते हुए आनंदपूर्वक रहने लगा।

❑

पुराणों में कथा आती है कि एक बार ब्रह्मा जी को सृष्टि रचयिता होने का अभिमान हो गया। इसी अहंकार से प्रेरित होकर वे भगवान विष्णु से मिलने पहुँचे। उन्होंने उन तक समाचार भिजवाया कि भगवान विष्णु को यह बता दिया जाए कि सृष्टि के निर्माता ब्रह्मा आए हैं, अतः वे उनसे तुरंत मिल लें।

भगवान विष्णु ने हँसकर समाचार लाने वाले से कहा—"ब्रह्मा जी से पूछना कि वे यह बता दें कि किस ब्रह्मांड के ब्रह्मा हैं; क्योंकि इस सृष्टि में 14 करोड़ ब्रह्मांडों का साक्षी तो मैं स्वयं हूँ।" भगवान विष्णु का उत्तर सुन ब्रह्मा जी का अहंकार तिरोहित हो गया और वे जान गए कि यह सृष्टि अनंत है और इसका रचयिता भी अनंत परमेश्वर ही है। शेष सब तो निमित्त मात्र हैं।

समय को साधें, जीवन को सँवारें

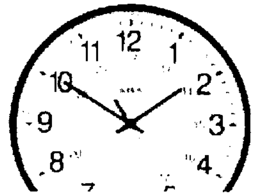

सभी को दिन भर में चौबीस घंटे मिले हैं, जिसका हर पल मिलकर दिवस बनता है और समय का हर पल नदी के प्रवाह की भाँति निरंतर गतिशील है, जो सतत प्रवाहमान है, जो कभी रुकता नहीं। इसको यदि सँभाला नहीं गया तो यह हमेशा के लिए हाथ से निकल जाता है।

सामान्यतया इनसान उपलब्ध समय के साथ कुछ इस तरह से व्यवहार करता है कि जैसे उसके पास अनंत समय हो, परंतु समय बीत जाने पर फिर वह पश्चात्ताप करता है।

वास्तव में मनुष्य के पास जो यथार्थ समय होता है, वह वर्तमान ही होता है। वह जीवन में जो कुछ भी करना चाहता है, पाना चाहता है या बनना चाहता है, वह इस वर्तमान का सदुपयोग करते हुए ही संभव हो पाता है।

इस तरह हर सुबह नए दिन के शुभारंभ का अवसर होता है, जिसमें हम दिन के श्रेष्ठतम उपयोग का खाका भली प्रकार खींच सकते हैं और हर रात दिन भर की उपलब्धियों के साथ भूल-चूकों की समीक्षा व सुधार करते हुए अगले दिन को और बेहतर बनाने का सुअवसर होता है और दिन का हर पल इसके सदुपयोग के साथ दिन के श्रेष्ठतम उपयोग को करने का अवसर होता है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन को सँवार कर परमलक्ष्य को साध सके।

इस तरह आने वाले कल का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, यह वर्तमान पर ही आधारित रहता है। बीत गए भूत का भी अधिक महत्त्व नहीं। जो कुछ भी है, वह वर्तमान है, जो हमारे हाथ में रहता है।

यदि हम सफलता व प्रसन्नता का सपना देखते हैं, तो हमें आज अभी से हर पल इसके लिए प्रयासरत रहना होगा तथा दिन के प्रत्येक घंटे, मिनट व पल का सदुपयोग करते हुए जीवन की सकल संभावनाओं को यथाशीघ्र साकार करना होगा।

अधिकांश लोग समय का महत्त्व नहीं समझते व इसका सही उपयोग नहीं कर पाते, जिसमें प्रमुख बाधाएँ कुछ इस तरह से रहती हैं—समय के मूल्य को नहीं समझ पाना; प्राथमिकताओं का तय नहीं होना; काम को टालते जाना; एक समय पर बहुत सारे कार्य हाथ में लेना, असफल या गलती होने से भयभीत होना; कार्यस्थल पर अव्यवस्था का होना; ना न कह पाना; बिगड़ी जीवनशैली व आदतें होना आदि।

समय के श्रेष्ठतम उपयोग के लिए समय प्रबंधन से जुड़ी निम्न बातों का ध्यान रखा जा सकता है—अपने समय की बरबादी की तह तक जाएँ। सबसे पहले देखें कि आपका समय कहाँ बरबाद हो रहा है।

जब यह समझ आएगा कि कौन-सी चीज आपके समय व ऊर्जा को चौपट कर रही है, जिसके कारण आपके महत्त्वपूर्ण कार्य कल पर टल रहे हैं, आपके जीवन में आवश्यक व महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए भी समय नहीं मिल पा रहा, सतत आपात की स्थिति बनी हुई है और जीवन नरक बनता जा रहा है, तो आप इनको चिह्नित कर इनका सहज समाधान कर सकते हैं।

प्रतिदिन की योजना बनाएँ व प्राथमिकताएँ तय करें। हर दिन पहले एक योजना बनाएँ कि पूरे दिन क्या-क्या कार्य पूरे करने हैं। कार्य का निर्धारण साप्ताहिक, मासिक एवं वार्षिक आधार पर भी किया जा सकता है और फिर नित्यप्रति के हिसाब से अपना कार्य निपटाते चलें।

सूची बनाने का लाभ यह होता है कि हमें कार्यों के क्रम की स्पष्टता रहती है, उनके संदर्भ में कोई विभ्रम की स्थिति नहीं रहती। इस टू-डू लिस्ट के आधार पर आप अपनी प्रगति की जाँच कर सकते हैं, जो आपको अभीष्ट दिशा में आगे बढ़ने के लिए सतत प्रेरित किए रखती है।

बीच-बीच में साप्ताहिक, मासिक व वार्षिक कार्यों की भी समीक्षा करते रहें। कार्य की समय सीमा तय करें व सीमारेखा बनाकर कार्य करें। आपको दिनभर में जो काम करने हैं, उनके लिए एक समय सीमा निर्धारित करें।

आपको निश्चित करना होगा कि अमुक कार्य के लिए कितना समय देना है। फिर समय सीमा के अंदर कार्य को पूरा करने का प्रयास करें। व्यावहारिक सीमारेखा बनाकर कार्य करने से दिनचर्या अनुशासित रहती है, अनावश्यक कार्यों में उलझने की गुँजाइश समाप्त हो जाती है तथा कार्यक्षमता कई गुना बढ़ जाती है।

दिन की शुरुआत कठिन व महत्त्वपूर्ण कार्य से करें। जो कार्य सबसे महत्त्वपूर्ण या कठिन लग रहा हो, उसको सबसे पहले निपटाएँ; क्योंकि प्रातः ऊर्जा का स्तर बढ़ा-चढ़ा रहता है, मन-मस्तिष्क स्फूर्त एवं सक्रिय रहते हैं। एकाग्रता भी प्रगाढ़ रहती है।

ऐसे में कम समय में अधिक कार्य पूर्ण होते हैं तथा बचे हुए समय का सदुपयोग दूसरे कार्यों को पूरा करने में किया जा सकता है। एक समय पर एक ही कार्य करें। एक साथ कई काम निपटाने पर मन की ऊर्जा व एकाग्रता बँट जाते हैं, इसलिए नियमित रूप से वह परिणाम नहीं निकल पाता, जिसे संतोषजनक कहा जा सके। इसलिए एक समय पर एक ही कार्य करें। जब यह पूरा हो जाए, तभी दूसरे कार्य में हाथ लगाएँ।

हर पूर्ण कार्य के साथ आत्मविश्वास बढ़ता है व कार्य की उपलब्धि का उत्साह बना रहता है। अपनी योजना में नूतनता लाते रहें। प्रतिदिन एक ही दिनचर्या व योजना पर चलने से शुष्कता आती है, बोरियत होने लगती है। इसलिए समय-समय पर योजना में बदलाव करते रहें। साथ ही दो कार्यों के बीच में अल्प अवकाश रखें।

कार्य की आंशिक सफलता के बीच में थोड़ा इधर-उधर टहलें, निर्मल जल व ताजगी लाने वाले पेय को लें तथा अपना मनपसंद कार्य करें। आपातकाल के लिए भी तैयार रहें। योजना के बाहर भी परिस्थितियों व लोगों का मिलना स्वाभाविक है। इनको दिनचर्या का आवश्यक हिस्सा मानते हुए, इनके लिए भी तैयार रहें। इसके साथ न कहना सीखें।

व्यस्त दिनचर्या के बीच ऐसे मौके आएँगे, जब लोग मनोरंजन के लिए, समय बिताने के लिए साथ देने का दबाव बनाएँगे या मिलने-जुलने व बात करने वालों का ताँता भी लग सकता है। अपने कार्य की प्राथमिकता के आधार पर इनको समय दें।

काम को बाँटना सीखें। कोई भी व्यक्ति सारे कार्य स्वयं नहीं कर सकता। इस कारण कुछ कार्य जो टीम के दूसरे सदस्य बेहतर कर सकते हों, ऐसे सुपात्र सदस्य को दें। इन कार्यों से बचे समय व ऊर्जा का नियोजन तब दूसरे बड़े व महत्त्वपूर्ण कार्यों में संभव हो पाता है। मोबाइल व सोशल मीडिया से उचित दूरी बनाकर रखें। आज के समय में मोबाइल समय बरबादी का प्रमुख कारण बना

हुआ है। अतः दिन में आवश्यक कार्यों के लिए ही इनका उपयोग करें।

यदि सोशल मीडिया में कुछ देखना हो या कुछ मनोरंजन करना हो तो इसको दिनचर्या के अंत में सब कार्य निपटने के बाद ही समय दें व इसका समय निर्धारित रखें।

समय सीमा में अनुशासित न करने पर मोबाइल व सोशल मीडिया का उपयोग समय की बरबादी का बड़ा कारण बन सकता है। पूर्णता के पीछे न भागें; क्योंकि हर कार्य क्रमिक रूप से पूर्णता की ओर बढ़ता है। प्रारंभ में ही पूर्णता की आशा न पालें। बड़े कार्य को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटते हुए इसे पूरा करें।

यदि हम समय के संदर्भ में इन बातों का ध्यान रखेंगे तो पाएँगे कि कम समय में अधिक कार्य पूर्ण हो रहे हैं। जीवन की उत्पादकता बढ़ रही है। दूसरे कार्यों के लिए अतिरिक्त समय मिल रहा है, जो पहले नहीं मिल पा रहा था। जीवन एक लय, ताल, गति में आगे बढ़ रहा है व जीवन अनावश्यक तनाव से मुक्त हो रहा है। हम सफलता के साथ जीवनलक्ष्य की ओर अनवरत बढ़ रहे हैं। जीवन में नए अवसर मिल रहे हैं व हम उपलब्ध अवसरों का बेहतर उपयोग कर पा रहे हैं।

हम पाएँगे कि जीवन के हर क्षेत्र में उच्चतर कुशलता का विकास हो रहा है। व्यक्तित्व अधिक प्रभावशाली बन रहा है और सम्मान बढ़ रहा है। जीवन सफलता के साथ सार्थकता की अनुभूति लिए आशा एवं उत्साह के साथ भर रहा है। ऐसा होने के लिए समय को साधना अनिवार्य हो जाता है। ❑

एक सुंदर से महल के पीछे एक हवेली खड़ी थी। हवेली के दरवाजे व खिड़कियाँ सब ओर से बंद थे। कहीं से जरा-सी भी रोशनी भीतर नहीं जाती थी। एक दिन हवेली महल को ताना देते हुए बोली—"महल महाशय! आपसे अधिक अच्छी सामग्री मेरे निर्माण में लगी है, पर तुम्हारी तारीफ करने को तो इतने सारे लोग घूमते हैं। मेरे पास कोई नहीं आता। ऐसा भेदभाव क्यों?"

महल बोला—"हवेली बहन! तुम जरा अपने खिड़की-दरवाजे खोलो तो तुम्हारे यहाँ भी मिलने वालों का ताँता लग जाएगा। जब हृदय खुलेगा, तभी तो प्यार मिलेगा। अनुग्रह-अनुदान उन्हें ही मिलते हैं, जो ग्रहणशील होते हैं। जो अपने द्वार बंद करके बैठते हैं, भगवान को भी उनके दरवाजे पर आकर वापस लौट जाना पड़ता है।"

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

गायत्री तीर्थ : जहाँ लोग तर जाते हैं

विगत अंक में आपने पढ़ा कि दिव्य सत्ता की योजना के अनुरूप पूज्य गुरुदेव के माध्यम से गायत्री तीर्थ शांतिकुंज के रूप में स्थापित हुए युगतीर्थ की तेजस्विता अध्यात्म जगत् के समस्त फलकों पर विराजमान थी। तत्कालीन विशिष्ट विभूतियों में अनेकों ने गायत्री तीर्थ शांतिकुंज की सर्वोपरि विशिष्टता को न केवल एक स्वर में स्वीकारा था, वरन अनुशंसा भी की। धर्म-संप्रदायों में मत-मतांतरों में भेद होना स्वाभाविक ही होता है और यही कारण बना कि कुछ संप्रदायों में पूज्य गुरुदेव द्वारा की गई आध्यात्मिक क्रांति को सहर्ष स्वीकारा नहीं जा सका था परंतु विलक्षणता इस बात की सर्वदा ही रही कि दिव्य सत्ता के प्रतिनिधि पूज्यवर के विरोध का दुस्साहस तो किसी से न बन पड़ा और सन् 1983 के आते-आते गायत्री तीर्थ शांतिकुंज ने मत्स्यावतार लेकर अनंतों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

सन् 1981 में नवंबर महीने की आठवीं तारीख। उस दिन देवोत्थान एकादशी थी। भारतीय धर्मानुयायियों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण तिथि। पौराणिक गाथाओं के अनुसार इस दिन भगवान विष्णु चार महीने की निद्रा से जागते हैं।

निद्रा आषाढ़ महीने की शुक्ल पक्ष की देवशयनी एकादशी से आरंभ होती है और चार महीने की इस अवधि में प्राय: सभी शुभ कार्य जैसे विवाह, दुकान, व्यवसाय, कारोबार आदि का आरंभ और नए मंदिरों, मकानों का निर्माण बंद रहता है।

आषाढ़ शुक्ल एकादशी को भगवान के सोने और कार्तिक शुक्ल एकादशी को जागने के पौराणिक आख्यान का आशय संभवत: वर्षाकाल से है। बरसात के इन दिनों में विशिष्ट कार्य संपन्न करने में तरह-तरह की बाधाएँ आती रही होंगी, इसलिए उन्हें वर्जित रखा गया। जिस घटना का जिक्र यहाँ किया जा रहा है, वह तिथि संदर्भ के कारण ही है।

इस दिन संध्या समय गुरुदेव के पास चार-पाँच कार्यकर्त्ता बैठे थे। इनमें दो बाहर क्षेत्र से आए थे और बाकी शांतिकुंज में ही निवास कर रहे जीवनदानी स्तर के स्थायी कार्यकर्त्ता। चर्चा आगामी योजनाओं को लेकर हो रही थी।

यों ही सहज भाव से। बीच-बीच में किसी कार्यकर्त्ता के परिवार या उसकी अपनी स्थिति का जिक्र भी आ जाता। किसी संदर्भ में गुरुदेव ने कहा—"अगले दिनों हमें शांतिकुंज के ऋषिकेश रोड वाले गेट की तरफ दो छतरियाँ भी बनवानी हैं।"

मौजूद कार्यकर्त्ता गुरुदेव की इस बात का आशय समझने के लिए सामान्य से ज्यादा सजग हो गए। गुरुदेव ने कहा—"जब हम और हमारे बाद माताजी शरीर छोड़ देंगी तो हम लोगों के अवशेष इन छतरियों में स्थापित किए जाएँगे। हम लोग इस शांतिकुंज में ही निवास करेंगे। छतरियाँ हमारे स्थूल स्वरूप का प्रतिनिधित्व करेंगी।" गुरुदेव ने पिछली पंक्ति पूरी करने के बाद बिना रुके कहा था। इतना सुनना था कि वहाँ मौजूद कार्यकर्त्ता सन्न रह गए। उन्हें लगा कि गुरुदेव शरीर छोड़ने की योजना बना रहे हैं।

इस कल्पना या आभास के साथ तरह-तरह के बिंब उन कार्यकर्त्ताओं के मन मस्तिष्क में उभरने लगे। गुरुदेव के बाद कैसा लगेगा, फिर उनसे प्रत्यक्ष संवाद नहीं हो सकेगा। कोई भी समस्या या प्रश्न उपस्थित होने पर अभी जिस तरह दौड़े चले आते हैं, तब यह संभव नहीं हो सकेगा। उनकी समाधि के पास बैठकर ही अपना जी हलका कर लेना होगा। इतने भर से संतोष कैसे होगा ? आदि-आदि प्रश्न मन में एक साथ फन उठाने लगे। उनके दंश से चित्त इतना व्यथित हुआ कि भीतर-ही-भीतर रुलाई फूटने लगी। एक कार्यकर्त्ता तो बिलख ही उठे और दूसरे की भी अश्रुधारा बहने लगी।

कार्यकर्त्ताओं को उदास और रुआँसा या विलाप करता देख गुरुदेव ने कहा—"अरे तुम लोग तो बिसूरने लगे। मैं तो शरीर छूटने के बाद भी यहीं रहने की बात कर रहा हूँ और तुम लोग ऐसे दुःखी हो रहे हो, जैसे मैं अभी ही अपनी काया-माया समेटकर जा रहा हूँ।" इतना कहकर उन्होंने बातचीत की दिशा मोड़ी और हलकी-फुलकी विनोदपूर्ण टिप्पणियाँ कीं। उन्हें सुनकर कार्यकर्त्ताओं के दुःखी और उदास दिखाई दे रहे चेहरे खिलने लगे।

बातचीत का माहौल सहज हुआ और गुरुदेव ने कहा—"अभी कम-से-कम नौ वर्ष मैं इधर ही हूँ। यहीं तुम सब लोगों के बीच। जीते-जागते इसी कलेवर में।"

वहाँ मौजूद कार्यकर्त्ताओं में एक को करीब बीस वर्ष पहले की घटना याद आई। उस समय माताजी को तीव्र हृदयाघात हुआ था। डॉक्टरों ने उनके जीवन को लेकर उम्मीद ही छोड़ दी थी। उस समय गुरुदेव ने कहा था कि माताजी हमारे बाद यह संसार छोड़ेंगी। हमारे जाने के लगभग पाँच वर्ष तक वे इसी धरती पर रहेंगी और परिजनों को स्नेह-दुलार बाँटेंगी। यह स्मरण आते ही उक्त कार्यकर्त्ता के मन में निश्चिंतता का भाव आया।

आश्वासन

गुरुदेव ने कहा—"तुम सभी लोग जानते हो कि शरीर एक-न-एक दिन तो छूटना ही है। जीवन चेतना का अस्तित्व उसके बाद भी बना रहता है। अपने इष्ट-अभीष्ट, आराध्य और प्रेमास्पद व्यक्तित्व तो शरीर छूटने के बाद भी मन, प्राण में बसते हैं। उनका क्षय कहाँ होगा। बल्कि वे और निकट आ जाते हैं। हमारे-आपके संबंधों का आधार सामान्य तो नहीं है। जन्म-जन्मांतरों का संबंध है। इसलिए स्नेह और आलोक की अनुभूति अगले दिनों प्रगाढ़ ही होगी। शरीर छूटने के बाद तो और भी प्रगाढ़ बनेगी।"

कहकर गुरुदेव रुके। फिर कहने लगे—"इन छतरियों के बारे में विशेष बात यह है कि ये हमारे जीते जी हमारे सामने ही निर्मित हो रही हैं। दुनिया में शायद ही किसी का स्मारक उसके जीते जी बना हो। लेकिन ये छतरियाँ हमारा स्मारक थोड़े ही हैं। हमारा निवास हैं। जन्म के बाद मरण की स्वाभाविक प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद हमारे पार्थिव स्वरूप का निवास।"

चर्चा यहीं पूरी हो गई। इसके बाद गुरुदेव के बताए स्थान पर दो छतरियों का निर्माण शुरू हुआ। उनके निर्माण के लिए विभिन्न तीर्थों से जल-रज और आवश्यक शिलाएँ मँगाई गई थीं, जिन्हें छतरी के गर्भ में स्थापित किया गया।

निर्माण के दौरान लगभग प्रतिदिन गुरुदेव उस स्थान पर आते थे और निरीक्षण करते। कभी-कभार वे पत्थरों और निर्माण-सामग्री को हाथ से छूकर देखते भी। उस समय जो परिजन वहाँ मौजूद रहते, उन्हें लगता कि गुरुदेव अपने दिव्य स्पर्श से उस सामग्री में प्राणचेतना का

संचार कर रहे हैं। निर्माण-कार्य में लगे साधकों और शिल्पियों ने इस दौरान जप-तप और अनुष्ठान भी किया।

1982 की वसंत पंचमी तक वह पूरा हो गया और उसी समय गुरुदेव ने उनका नामकरण किया 'प्रखर प्रज्ञा' एवं 'सजल श्रद्धा'। स्थापना के समय माताजी भी उपस्थित थीं।

ऐसा संदेश कतई नहीं जा रहा था कि गुरुदेव या माताजी अपनी लीला समेटने की तैयारी कर रहे हैं। पर कुछ कार्यकर्त्ताओं को ये स्थापनाएँ न जाने किन आशंकाओं और असुरक्षा भावना के कारण असहज बन रही थीं। गुरुदेव ने शायद उनके मन को पढ़कर ही कहा कि अब यहाँ हमारी उपस्थिति को हमेशा के लिए सुनिश्चित मान लिया जाए। जो हमारे अंतस् से जुड़े हुए हैं, उन्हें इस बात की सच्चाई दिनोंदिन प्रगाढ़ महसूस होगी और वे इस सच के दूसरे आयामों से भी साक्षात् करते रहेंगे।

जिस जगह स्थापना की गई वहाँ पास ही पिछले कुछ वर्षों से गुरुदेव विशेष पर्व-प्रसंगों पर ध्वजारोहण किया करते थे। स्वतंत्रता दिवस (15 अगस्त) गणतंत्र दिवस (26 जनवरी) के अलावा वसंत पंचमी, गायत्री जयंती के दिनों भी।

सन् 1982 की उस वसंत पंचमी पर भी गुरुदेव ने वहीं ध्वजारोहण किया। उस दिन आयोजन स्थल पर अद्भुत सन्नाटा छाया था। सन्नाटा कहने के बजाय शांति कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। मौजूद परिजनों में कई को लगा कि ध्यान या समाधि जैसी अवस्था है। सुबह आठ बजे का समय रहा होगा।

सूर्योदय के समय पूर्व दिशा में छाई लालिमा धीरे-धीरे समाधिस्थल को अरुणिम आभा से आवृत किए जा रही थी और धीरे-धीरे वासंती धूप गायत्री नगर में खेलने लगी थी। 'प्रखर प्रज्ञा' और 'सजल श्रद्धा' का स्थापना संस्कार शुरू हुआ तो धूप यकायक सिमटने लगी और आकाश में इधर-उधर से दौड़कर आ रहे बादलों के टुकड़े गायत्री नगर पर छाने लगे। गुरुदेव और माताजी के हाथों जब समाधियों के संस्कार शुरू हुए तो बादलों ने बूँदा-बाँदी की एक लहर छोड़ दी।

उस स्थान पर—गायत्री नगर में इंद्रदेव ने जैसे छिड़काव किया। पवित्रीकरण और मार्जन की तरह हुई उस बूँदा-बाँदी के बाद आसमान कुछ ही मिनटों में साफ हो गया। वसंत की शीतल गुनगुनी धूप फिर खिल उठी। समारोह संपन्न हो गया। प्रणाम का दौर शुरू हुआ।

उस दिन आश्रम में हजारों लोग उपस्थित थे। गुरुदेव माताजी शांतिकुंज के मुख्य भवन में—अखंड दीप के पास परिजनों से मिल रहे थे। इधर 'सजल श्रद्धा'-'प्रखर प्रज्ञा' की स्थापना के पास भी परिजन प्रणाम करते हुए आ रहे थे। अखंड दीप के सामने प्रणाम का क्रम यहीं से शुरू हो रहा लगता था।

उसी वसंत पंचमी की शाम, प्रणाम समाप्त होने के बाद कुछ परिजन 'सजल श्रद्धा'-'प्रखर प्रज्ञा' के पास बैठे ध्यान कर रहे थे। दिन में और इससे पहले भी विभिन्न अवसरों पर गुरुदेव के व्यक्त किए उद्गार याद कर रहे थे—''गंगा की गोद और हिमालय की छाया में बना शांतिकुंज इस युग का ऊर्जा अनुदान केंद्र है।

हिमालय की दिव्य ऋषिसत्ताओं का अवतरण केंद्र और युगांतरीय चेतना का मुख्यालय है। महाकाल का घोंसला है। राह चलते लोग भी इस स्थान पर—'सजल श्रद्धा'-'प्रखर प्रज्ञा' के पास आकर जो भावनाएँ और अपेक्षाएँ व्यक्त करेंगे, उन्हें सुख-संतोष मिलेगा। ऐसे किसी भी व्यक्ति को निराश नहीं होना पड़ेगा।

पूछें या न पूछें ?

'सजल श्रद्धा'-'प्रखर प्रज्ञा' की स्थापना के बाद कुछ बुद्धिजीवी और तथ्यों तथा संगतियों के सतही धरातल पर ज्यादा निर्भर रहने वाले परिजनों के मन में तरह-तरह के सवाल उत्पन्न हो रहे थे।

बाहर रहने वाले कतिपय परिजनों ने तो ये सवाल पत्रों में लिखकर पूछे भी, पर शांतिकुंज में ही निवास कर रहे कुछ कार्यकर्त्ता संकोच महसूस कर रहे थे। गुरुदेव से पूछें तो कैसे पूछें ? उनके प्रति अविश्वास और संदेह का दोष लगेगा, गुरुद्रोह होगा ? नहीं पूछें तो मन खिन्न रहेगा, अशांति बढ़ेगी। आस्थाएँ डगमगाएँगी। इस असमंजस ने एक पुराने कार्यकर्त्ता को बुरी तरह व्यथित कर दिया। इस बुरी तरह कि वे विक्षिप्त से रहने लगे। यह कार्यकर्त्ता पाँच साल पहले भी इसी तरह की मन:स्थिति से गुजरे थे और इस समय, कारण अलग थे। पारिवारिक कारणों ने इस समय उन्हें तोड़ दिया था।

सन् 1975-76 में वे मनोविक्षोभ से जूझते हुए गुरुदेव के पास कुछ सप्ताह तक रहे भी थे। तब वे क्षेत्रों में चल रहे गायत्री महायज्ञों और युग निर्माण सम्मेलनों में जाया करते थे। सन् 1982 के दिनों में वे 'सजल श्रद्धा'-'प्रखर प्रज्ञा' की स्थापना के समय विचलित दिखाई दिए और लगा कि पराकाष्ठा होने जा रही है तो गुरुदेव ने एक दिन पूछ ही लिया—"क्या बात है मोहन। पिछले कुछ दिनों से कुछ ज्यादा ही परेशान दिखाई दे रहे हो, मुझे बताओ क्या बात है ?"

गुरुदेव ने उन कार्यकर्त्ता को व्यवहार के लिए एक प्राचीन ऋषि का नाम दिया था। बाकी दुनिया के लिए यही नाम था, लेकिन गुरुदेव उन्हें मोहन के वास्तविक और पुराने नाम से पुकारते थे। 1990 में गुरुदेव के शरीर छोड़ने के बाद उन्होंने 'मोहन' नाम लिखना ही छोड़ दिया। उनका कहना था कि इस नाम से पुकारने वाला ही चला गया तो इसे लिखने का क्या औचित्य। इसके बाद वे ऋषिसत्ता के नाम से ही पहचाने, संबोधित किए जाते। गुरुदेव ने अपने इस शिष्य की व्यथा के बारे में पढ़ा और पूछा तो वे बोले—"मैं क्या बताऊँ गुरुदेव! आप अच्छी तरह जानते हैं।'''

"तू इस परेशानी से उबरना चाहता है।" —गुरुदेव ने कहा। इस पर मोहन का जवाब था—"आप जैसा ठीक समझें"।

इसके बाद गुरुदेव ने कहा—"मथुरा छोड़ने से महीने पहले मैंने कहा था कि मेरे मरने के बाद यह शरीर किसी प्रयोगशाला को सौंप दिया जाए, जीवविज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थी इसे चीरे-फाड़ें और शरीर के संबंध में अपना ज्ञान बढ़ाएँ। इससे पहले इस शरीर के सभी स्वस्थ अंग निकाल लिए जाएँ और उन्हें जरूरतमंदों के शरीर में प्रत्यारोपित कर दिया जाए। शरीर के वे हिस्से, जो किसी भी काम में न आएँ उन्हें जंगल में फेंक दिया जाए, ताकि चील-कौए उनसे अपना उदर भरण कर लें।" कहकर गुरुदेव रुके।

उन कार्यकर्त्ता के चेहरे पर संतोष का भाव था कि उनके मर्म को समझ लिया गया है। गुरुदेव ने पूछा—"अब छतरियों की स्थापना से तुम्हें लगा है कि पहले कही गई और अखण्ड ज्योति में छपी उन घोषणाओं का क्या होगा ? यही न!""हाँ गुरुदेव।" उन कार्यकर्त्ता ने कहा—"मुझे डर लगता है कि लोग पिछली घोषणाओं से तुलना करेंगे तो मेरे गुरु के बारे में अपवाद फैलेगा।" सुनकर गुरुदेव के चेहरे पर स्मित भाव आया।

उन्होंने पूछा—"बेटा तुझे तो मेरी बातों पर अविश्वास नहीं है न।""नहीं गुरुदेव।" शिष्य ने कहा। इस पर गुरुदेव ने कहा—"तो सुन। विदाई

से पहले से पहले जो घोषणाएँ की थीं, वे अक्षरशः सही हुई हैं और जो बाकी बची हैं, वे भी सही होंगी। यथासमय उन घटनाक्रमों का साक्षात् भी हो जाएगा। यह शरीर वही शरीर नहीं है, जो मथुरा छोड़कर हरिद्वार आया था। और यहाँ से अपने गुरु के पास चला गया था........।''

कहते-कहते गुरुदेव रुके, फिर बोले—''अभी इतना काफी है। तुमसे कोई दुनियादार साथी पूछे तो इतना ही कहना कि हमारे गुरुदेव ने अपने आप को हजारों-लाखों कार्यकर्त्ताओं में बाँट दिया है। उनकी लौ से उनके तमाम परिजनों की लौ प्रदीप्त हुई और उनके एक शरीर ने नहीं, सैकड़ों शरीरों ने अपने अंगों का दान किया है। बहुत से निष्प्राण आदिवासी शरीर और शहरी लोगों के कायिक अवशेष चील-कौओं के लिए जंगलों में छोड़ दिए गए हैं। तुम चाहो तो ऐसे लोगों के नाम, निवास और परिचय आदि के ब्योरे भी दे सकते हो, लेकिन ध्यान रखना संदेह करना जिनकी फितरत में शामिल हो, उन्हें कभी संतुष्ट नहीं किया जा सकेगा।'' (क्रमशः)

एक संत प्रवचन दे रहे थे, सुनने आए श्रद्धालुओं ने उनके सम्मुख एक समस्या रखी। वे बोले—''महाराज! हमारे मन में कइयों के प्रति द्वेष है, उसे कैसे निकालें?'' संत बोले—''आप लोग कल ऐसा करना कि अपने साथ थैला भरकर आलू लाना और हर आलू पर उस व्यक्ति का नाम लिखना, जिससे आपको द्वेष हो।''

अगले दिन सभी श्रद्धालु अपने साथ आलू भरा थैला लेकर आए, सबने अनेक आलुओं पर उन व्यक्तियों के नाम लिखे हुए थे, जिनसे उनको द्वेष था। संत बोले—''अब ऐसा करना कि इस थैले को रात-दिन अपने पास रखना, छोड़ना नहीं।''

सत्संग में आए सभी श्रद्धालुओं ने इस निर्देश का पालन प्रारंभ कर दिया। दो-तीन दिन तो विशेष समस्या नहीं हुई, परंतु सप्ताह अंत होते तक आलुओं में से भयंकर दुर्गंध आने लगी। अब सब लोग चिंतित हुए और संत के सम्मुख जाकर उनसे बोले—''महाराज! आपने भी यह कैसा विचित्र कार्य हमें करने को दिया है। इन बदबूदार आलुओं को हमें कब तक रखना है?''

संत बोले—''आप लोग यह सोचो कि जब इन नाम लिखे आलुओं को हफ्ते भर साथ रखने में इतनी दुर्गंध उठती है तो जब आप इन व्यक्तियों के नामों को ईर्ष्या और द्वेष के साथ अपने अंतर्मन में रखते होगे तो आपके चित्त से कितनी दुर्गंध उठती होगी? जब भावनाएँ कलुषित होंगी तो मन को भारी ही बनाएँगी, हलका नहीं।'' कार्य का उद्देश्य समझ में आ जाने पर सबको एक महत्त्वपूर्ण सीख मिल गई।

मंजिल तेरे पग चूमेगी, आज नहीं तो कल

इस सृष्टि में हर चीज एक विधान के अंतर्गत कार्य कर रही है। जीवन में सफलता के भी अपने नियम हैं, अपने कायदे हैं। इनको समझते हुए यदि कोई आगे बढ़ता है, तो जीवन में आज नहीं तो कल सफलता सुनिश्चित है। हर सफल व्यक्ति के जीवन में झाँककर देखें तो समझ आता है कि लक्ष्य के प्रति अटूट विश्वास, दृढ़ निश्चय, अनवरत प्रयास एवं एकाग्रचित्त अभ्यास इसके आधारभूत तत्त्व रहते हैं।

किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए उस पर विचार करना बहुत आवश्यक हो जाता है। जितना हम उसका ध्यान करते हैं, उतना ही वह हमारे पास खिंचा चला आता है और जैसे ही हम उसको प्राप्त करने के लिए सफलता पर संदेह करते हैं, वैसे ही वह हमसे दूर हो जाता है और यदि हम चाहते कुछ हैं और प्रयास कुछ और करते हैं, तो हम मनचाही सफलता की आशा नहीं कर सकते।

यदि आपके हृदय में किसी पदार्थ को पाने की इच्छा जाग्रत हो जाती है, तो मानकर चलें कि परमात्मा ने वह पदार्थ आपके लिए सुरक्षित कर दिया है। फिर आप चाहे कितना भी निराशा के झूले में झूलते रहें, अँधेरे में भटकते रहें, इस बात की कोई चिंता न करें। बस, आपके हृदय में इसको पाने की इच्छा सुलगती रहनी चाहिए। यदि आपका संकल्प दृढ़ है, निष्ठा अटूट है तो फिर आपको वह सफलता अवश्य मिलकर रहेगी। बस, आप तो इसके स्वप्न निरंतर देखते रहें, मंजिल की दिशा में अपार विश्वास के साथ बढ़ते रहें।

ऐसे कितने सफल लोग हुए हैं, जिनकी सफलता पर लोगों ने प्रारंभ में संदेह किया, उनके सपने का मजाक उड़ाया और ताने कसे गए कि वे कभी अमुक मंजिल को हासिल नहीं कर पाएँगे, लेकिन उनका निश्चय अटल रहा, अपने प्रयास में वे निरंतर सुधार करते रहे और अपनी मंजिल की दिशा में बढ़ते गए तथा एक दिन निर्धारित शिखर पर झंडा फहराकर जग को चकित कर गए।

इन पलों में विरोधियों के स्वर पलट गए, सभी इनकी बुलंदी का गुण-गान करने लगे और उनकी सफलता के रहस्य पर विचार करने लगे। इन सफल व्यक्तियों की सफलता का रहस्य केवल इतना भर था कि इन्होंने अपनी समस्त शक्तियों को लक्ष्य पर केंद्रित रखा। अपने सकल साधन ध्येय की प्राप्ति हेतु झोंक दिए। प्रारंभिक कठिनाइयों के बावजूद जब वे अपने प्रयास में डटे रहे तो फिर समय के साथ अप्रत्याशित रूप से ईश्वरीय सहायता भी इनको मिलती गई।

वास्तव में जब हम पूरे दिल से किसी चीज को चाहते हैं और इसके लिए हर निर्धारित कसौटी पर खरा उतरते हैं, तो पूरी कायनात जैसे हमारे पक्ष में खड़ी हो जाती है और आवश्यक संसाधन व सहयोग जुटने प्रारंभ हो जाते हैं और यह सब अपने हृदय में उठी अदम्य और एकांतिक इच्छाशक्ति का स्वाभाविक परिणाम होता है। वस्तुतः हर श्रेष्ठ इच्छा या कामना ईश्वरीय कृपा या प्रेरणा से ही जन्म लेती है। ईश्वर ने हर व्यक्ति को विशिष्ट उद्देश्य के लिए धरती पर भेजा है। वह चाहता है

कि उसकी हर संतान सफल हो, उसके विश्व उद्यान को अधिक सुंदर व समुन्नत बनाने में उसकी मदद करे।

यदि हम उसकी इच्छा को समझ नहीं पाते, उस सर्वशक्तिमान से स्वयं को अलग कर देते हैं, तो फिर एक बड़ी भूल करते हैं। अपने हृदयकेंद्र में विराजमान ईश्वर व उसकी वाणी को अनसुनी करना इनसान की बड़ी भूल रहती है। यदि हम अंत:प्रेरणा के रूप में उठी ध्वनि के प्रति सच्चे रहते हैं, तो फिर उसका पूरा सहयोग मिलता है।

कहावत भी है कि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं। तमाम अभाव एवं परिस्थितियों की प्रतिकूलता के बीच सफलता के शिखर छूने वाले महापुरुषों के जीवन को जब हम पढ़ते हैं, तो पाते हैं कि इनकी इच्छा-आकांक्षा इतनी तीव्र एवं स्पष्ट थी कि वे मन में पहले ही इसकी जीवंत छवि देख रहे थे। उनका अंत:करण जीवनध्येय के प्रति उत्साह व उमंग से सराबोर था।

यदि आपके मन में किसी भवन का नक्शा ही नहीं बन पा रहा तो वह मकान कैसे बना सकते हैं। यदि आप आधे-अधूरे मन से पूर्ण विश्वास के अभाव में आगे बढ़ते हैं, तो छोटी-छोटी असफलताएँ व विरोध आपके मन को हताशा से भरने के लिए पर्याप्त हो जाते हैं और ऐसे में अभीष्ट सफलता से वंचित रहना स्वाभाविक है।

ऐसे में मानकर चलें कि दोष न भगवान का है और न किसी दूसरे व्यक्ति या परिस्थिति का। गहरे निरीक्षण एवं आत्मविश्लेषण करने पर हम इसमें दोष अपना ही पाएँगे। हम पाएँगे कि हमारी इच्छा, संकल्प, विश्वास और प्रयास में कहीं अधूरापन रह गया। हम जिस भी स्थिति में इस समय खड़े हैं, हम स्वयं ही इसके लिए जिम्मेदार हैं और यदि ठान लें तो हम स्वयं ही अपने भाग्य के विधाता हो सकते हैं।

फिर हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही करते हैं और वैसे ही बनते जाते हैं। इस तरह हमारी सफलता हमारी ही सोच व क्रिया का परिणाम होती है तथा असफलता भी हमारी ही सोच व क्रिया में न्यूनता का परिणाम रहती है।

वास्तव में हमारी सफलता हमारे मन के दृढ़ संकल्प व एकांतिक प्रयास-पुरुषार्थ का परिणाम होती है। इसके कारण हम अपने लक्ष्य पर केंद्रित होकर कार्य करते हैं। सूर्य की किरणें जब बिखरी होती हैं, तो इनका सामान्य ताप से अधिक कोई प्रभाव नहीं होता, लेकिन जब इनको आतिशी शीशे से होकर गुजारते हैं, तो यही एक बिंदु पर एकाग्र होकर अपना चमत्कार दिखाती हैं। नीचे रखे कागज या लकड़ी के टुकड़े में आग सुलगने लगती है।

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, सफलता का एक ही रहस्य है—चित्त की एकाग्रता। जब मन की शक्तियाँ एक बिंदु पर एकाग्र हो जाती हैं, तो चमत्कार घटित होते हैं। देह की हर मांसपेशी, रक्तकण, स्नायुतंत्र से लेकर मन, बुद्धि, हृदय व आत्मा सब जब एकजुट हो जाते हैं, तो अद्भुत परिणाम आते हैं। दुनिया दाँतों तले उँगली दबाने के लिए बाध्य हो जाती है। चुंबक की भाँति सफलता ऐसे व्यक्तियों की ओर आकर्षित होती है। जिस भी कार्य में वे हाथ डालते हैं, उसी में सोना उगलने की उक्ति चरितार्थ होती है।

ऐसे में बंजर मरुस्थल में भी जलस्रोत प्रकट होने लगते हैं, भूमि उर्वर हो जाती है, पूरा परिवेश हरियाली से लहलहाने लगता है। ऐसे ही व्यक्ति के अंत:करण की बंजर भूमि में व्यक्ति चाहे तो अपने संकल्प व एकाग्रता से अपनी शक्तियों व सद्गुणों को उभारते हुए मनचाही सफलता को

प्राप्त कर सकता है, अभीष्ट गुणों का समावेश कर अपने व्यक्तित्व को मनचाहा निखार दे सकता है।

मानकर चलें कि यदि अंत:करण में श्रेष्ठ विचार व संकल्प के बीज पड़ेंगे, अगाध श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ इनका सिंचन होगा, अपने भावभरे प्रयास की खाद पड़ेगी, तो इसमें सफलता, प्रगति व शांति की फसल लहलहाकर रहेगी, जीवन खुशहाली से झूम उठेगा व पूरे जग का भी इसके साथ सुनिश्चित उपकार होगा।

जो इस सरल से रहस्य को नहीं जानते, वे कँटीले बीज बोकर मीठे फल की आशा पालने की विडंबना करते हैं।

तमाम दिशा में मन की ऊर्जा को बिखेरकर आसमान को छूने की दुराशा पाले रहते हैं। आधे-अधूरे मन से सपने लेते हुए पूरी सफलता चाहते हैं। बिना कीमत चुकाए बड़ी उपलब्धि हासिल करना चाहते हैं। यह कैसे संभव है?

ऐसे में तो निराशा, हताशा व असफलता ही हाथ लगनी तय है, जिसके लिए फिर ये भगवान से लेकर दूसरे इनसान व परिस्थिति को कोसते फिरते हैं और नकारात्मक मन:स्थिति के साथ गहरी कुंठा एवं अवसाद में जीते देखे जाते हैं। इस स्थिति से उबरने का एक ही उपाय है—सफलता के वर्णित उपरोक्त सूत्रों को समझें व इन पर चलने का अपना ईमानदार प्रयास करें। ❑

राजा देवकीर्ति युद्धकला में अत्यंत निपुण थे। अनेक महारथियों को उन्होंने पराजित किया था। दूसरों को हराने का, नीचा दिखाने का अभिमान सबसे बुरा होता है।

इसी अभिमान में वे एक दिन अपने गुरु से मिलने पहुँचे और दंभपूर्ण स्वर में बोले—"गुरुदेव! मेरा स्वागत करें, आज मैं सब योद्धाओं को हराकर, आपका नाम ऊँचा कर यहाँ लौटा हूँ।"

उनके इस व्यवहार पर गुरु हँसे और बोले—"देवकीर्ति तूने सबको पराजित किया, पर क्या स्वयं को पराजित कर पाया?" देवकीर्ति को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

वे बोले—"गुरुदेव! क्या अपने को भी कोई पराजित कर सकता है?" गुरुदेव बोले—"बेटा! असली युद्ध तो अपने विरुद्ध ही लड़ा जाता है। जो अपने अहंकार को पराजित कर लेता है, उसका पराक्रम ही सबसे बड़ा है। अपनी दुष्प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर लेना ही साधना है और अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत कर लेना ही सिद्धि है।" यही सत्य हम सबके जीवन पर भी लागू होता है।

परामर्श का विद्यार्थियों पर प्रभाव

शिक्षा बच्चों के जीवन-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अच्छी शिक्षा और अच्छे माहौल में शिक्षा बच्चों के संपूर्ण व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। विद्यालयों में संपन्न कराई जाने वाली शिक्षा का उद्देश्य केवल विषयीज्ञान, जानकारी या कागज की डिग्री प्रदान करना ही नहीं है, अपितु एक अच्छे जीवन का निर्माण भी करना है। अत: विद्यालयी शिक्षा को प्रभावी और उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए शिक्षातंत्र निरंतर प्रयासरत रहता है।

विद्यालयों में अच्छी शिक्षा के दो प्रमुख मानदंड हैं—शिक्षा निष्पादन और विद्यालय समायोजन। शिक्षा निष्पादन का संबंध बच्चों के पाठ्यक्रम को प्रभावी और रोचक ढंग से पढ़ाए जाने से है, ताकि उसमें विषय की अच्छी समझ उत्पन्न हो तथा परीक्षा परिणाम श्रेष्ठतम प्राप्त हो सके।

दूसरा, विद्यालय समायोजन का संबंध बच्चों के पारिवारिक वातावरण-संस्कार और विद्यालय के वातावरण से है। ये दोनों कारक मिलकर बच्चों की विद्यालयी शिक्षा को सफल और गुणवत्तापूर्ण बनाते हैं।

भारतीय संदर्भ में शैक्षणिक निष्पादन में कमी और विद्यालयी समायोजन की समस्या विद्यालयी शिक्षा जगत् की एक बड़ी चुनौती रही है। सरकार द्वारा समय-समय पर इस चुनौती से निपटने के लिए अनेक योजनाएँ भी विद्यालयों में आरंभ की गई हैं, परंतु इनका भी कोई प्रभावी परिणाम दिखाई नहीं देता है। विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों की संख्या में भी निरंतर कमी आ रही है।

ऐसे में आवश्यकता है कि शैक्षणिक निष्पादन की प्रक्रिया को रोचक तथा प्रभावी बनाने के उपायों को खोजा जाए तथा विद्यालयी समायोजन के लिए विद्यालय स्तर पर प्रत्येक बच्चे को सहायता उपलब्ध कराई जाए। उक्त आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

यह शोध अध्ययन वर्ष-2018 में शोधार्थी अभिषेक कुमार दुबे द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ0 दीपक सिंह के निर्देशन में पूरा किया है। इस विशिष्ट शोध का शीर्षक है—'मल्टीमीडिया लर्निंग तथा परामर्श का उच्च प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन एवं विद्यालय समायोजन स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।' शोधार्थी द्वारा इस प्रयोगात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधि पर आधृत अध्ययन के प्रयोग कार्य हेतु उत्तर प्रदेश के जिला मिर्जापुर के उच्च प्राथमिक विद्यालय का चयन किया गया।

यादृच्छिक प्रतिचयन विधि का प्रयोग करते हुए कक्षा 8 के 60 विद्यार्थियों को चयनित किया गया, जिनकी उम्र 13 से 14 वर्ष की थी। चयनितों को पुन: समान दो समूहों में वर्गीकृत किया गया। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित विद्यार्थियों का शोध उपकरणों की सहायता से परीक्षण किया गया। स्वास्थ्य परीक्षण में जिन शोध उपकरणों को प्रयुक्त किया गया, वे हैं—डॉ. अवधेश किशोर प्रसाद सिन्हा एवं डॉ. आर. पी. सिंह (1971)

द्वारा निर्मित समायोजन आन्वेक्षिकी तथा शैक्षिक निष्पादन ज्ञात करने के लिए चार विषयों से संबंधित 50-50 बहुविकल्पीय प्रश्नों की प्रश्नावली का प्रयोग किया गया।

परीक्षण के उपरांत चार माह की अवधि तक दोनों 30-30 विद्यार्थियों के प्रयोगात्मक समूह पर शोध-प्रक्रिया में सम्मिलित तकनीकों द्वारा अध्यापन की प्रक्रिया को पूरा किया गया। प्रयोग का समय विद्यार्थियों के प्रत्येक विषय हेतु आधा घंटा निर्धारित रखा गया तथा अवकाश के दिनों को छोड़कर शेष सभी दिनों में नियमित अध्यापन कार्य संपन्न किया गया।

पाठ्य सामग्री के अध्यापन की तकनीकों में प्रथम प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों के लिए ब्लैकबोर्ड अधिगम को प्रयुक्त किया गया तथा दूसरे प्रयोगात्मक समूह के लिए मल्टीमीडिया अधिगम एवं साप्ताहिक परामर्शन तकनीक को प्रयुक्त किया गया। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति पुन: सभी विद्यार्थियों का शोध उपकरणों के माध्यम से स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों को एकत्रित कर उनका सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणामों के माध्यम से शोधार्थी ने यह पाया कि मल्टीमीडिया लर्निंग एवं परामर्शन तकनीक का उच्च प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन एवं विद्यालय समायोजन क्षमता पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

तुलनात्मक दृष्टि से तथ्यों का विश्लेषण करने पर यह शोध निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि प्रयोगात्मक समूह प्रथम एवं प्रयोगात्मक समूह द्वितीय के विद्यार्थियों के संवेगात्मक समायोजन, सामाजिक समायोजन एवं शैक्षिक समायोजन में सार्थक अंतर है एवं इसी तरह दोनों समूहों के विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन में भी सार्थक अंतर है।

अत: शोध परिणामों एवं निष्कर्ष के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्लैकबोर्ड अधिगम की अपेक्षा मल्टीमीडिया लर्निंग एवं परामर्श का उपयोग कर विद्यालयों में बच्चों के शैक्षिक निष्पादन में सुधार तथा समायोजन संबंधी समस्याओं का निवारण किया जा सकता है।

इस शोध अध्ययन का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष शोधार्थी द्वारा प्रयुक्त शोध तकनीकें हैं। पहली तकनीक मल्टीमीडिया लर्निंग तथा दूसरी परामर्श है। शोध में पहली तकनीक को शैक्षिक निष्पादन में सुधार एवं गुणवत्ता लाने की दृष्टि से प्रयुक्त किया गया तथा दूसरी को विद्यालयी समायोजन की क्षमता के विकास हेतु प्रयुक्त किया गया और दोनों की सार्थक रूप से प्रभावी एवं कारगर तकनीक के रूप में पुष्टि की गई।

मल्टीमीडिया लर्निंग को विद्यालयों में शिक्षण कार्य को प्रभावी बनाने वाला महत्त्वपूर्ण अधिगम माध्यम माना जाता है। इस तकनीक में एक से अधिक उपायों को प्रयुक्त कर अध्ययन-अध्यापन का कार्य किया जाता है। पाठ्यक्रम को दृश्य एवं श्रव्य माध्यमों से विद्यार्थियों में प्रसारित किया जाता है। तकनीकों, यंत्रों एवं स्मार्ट क्लास जैसी सुविधाओं से युक्त मल्टीमीडिया लर्निंग से विद्यार्थी अपने विषयों को सरलतापूर्वक अच्छे से सीख पाता है, जिससे उसके ज्ञानस्तर एवं परीक्षा परिणाम के स्तर में निरंतर गुणवत्ता बढ़ती जाती है।

मल्टीमीडिया लर्निंग की अवधारणा इस मनोवैज्ञानिक सिद्धांत पर आधृत है कि विद्यार्थी केवल शब्दों से सीखने की तुलना में शब्द के साथ चित्रों, प्रतिमा, सजीव चित्रण, ऑडियो-वीडियो आदि माध्यमों से ज्यादा अच्छे ढंग से अर्थपूर्ण रूप से विषय को सीख पाता है। इस तकनीक से विद्यार्थियों को विषय पर केंद्रित बनाए रखने में तथा तथ्यों एवं सूचनाओं को संगत रूप में प्रभावी ढंग से सिखाने में अत्यंत सहायता मिलती है।

अध्ययन में सम्मिलित दूसरी तकनीक परामर्श है। यह एक प्रभावी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा उपचार-विधि है। परामर्श-विधि का प्रयोग व्यक्तित्व विकास तथा व्यक्तित्व समस्या के समाधान—दोनों उद्देश्यों के लिए किया जाता है। विद्यार्थियों के लिए यह दोनों तरह से अत्यंत उपयोगी है।

इस अध्ययन में परामर्श का प्रयोग एक विकासात्मक विधि के रूप में किया गया है। परामर्श के आठ प्रमुख चरण होते हैं। शोधार्थी ने इन सभी का समावेश कर इस अध्ययन के प्रयोग को प्रभावी बनाया है। ये आठ चरण हैं—विद्यार्थी के साथ परामर्श सत्रों का निर्धारण करना, परामर्श विधि की पूर्व जानकारी एवं सावधानी, विद्यार्थी एवं परामर्शदाता के बीच विश्वास का विकास, परामर्श किए जाने वाले विशिष्ट लक्ष्यों की पहचान, परामर्श-विधि का क्रियान्वयन एवं विकास, परामर्श विधि का समापन, परामर्श के परिणामों का मूल्यांकन एवं निष्कर्ष की प्राप्ति।

उक्त आठ चरणों में परामर्श की संपूर्ण प्रक्रिया संपन्न की जाती है। परामर्शदाता विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं को ज्ञात कर उनके समाधान के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करता है। परामर्श की सहायता से विद्यार्थी की शिक्षा संबंधी बाधाएँ दूर करने तथा कक्षा में अच्छा स्थान प्राप्त करने में सफलता प्राप्त होती है।

विद्यार्थी के जीवन में अनेक तरह के तनाव होते हैं, जो उसके विद्यालयी समायोजन को तथा शैक्षिक निष्पादन को प्रभावित करते हैं; जैसे—कक्षा कार्य करने में कठिनाई, कक्षा में विषय को समझने में परेशानी, कक्षा में सहपाठियों से संबंधित दबाव, अलग-अलग पारिवारिक वातावरण से होने के कारण आपस में सामंजस्य बिठाने में परेशानी आदि अनेक तनाव हैं, जो समायोजन के साथ-साथ विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धियों को भी कमजोर करते हैं, अत: ऐसे तनावों को दूर करने में परामर्श-विधि एक समुचित और कारगर उपाय के रूप में सामने आती है।

इस विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर शोधार्थी का यह विनम्र आग्रह है कि वर्तमान में विद्यालयी शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण और सार्थक बनाने हेतु मल्टीमीडिया लर्निंग माध्यम अत्यंत आवश्यक है। अध्ययन में यह स्पष्ट पता चलता है कि इस माध्यम से शिक्षा संबंधी अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

इसके साथ ही प्रत्येक विद्यालयों में परामर्श सेवाओं का होना भी अनिवार्य होना चाहिए; क्योंकि विद्यार्थियों के समक्ष उपस्थित मनोवैज्ञानिक समस्याओं की समय पर पहचान एवं उनका शीघ्र समाधान करना अत्यंत आवश्यक है।

यदि इस स्तर पर इन समस्याओं का समाधान नहीं किया गया तो बालक के भावी विकास में अनेक बाधाएँ उत्पन्न होने की संभावना बन जाती है। परामर्श के माध्यम से ऐसी समस्याओं का विद्यालय स्तर पर ही समाधान कर विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास को संतुलित एवं गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित किया जा सकता है। ❑

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्या दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥ —*कठो. 1/3/14*

अर्थात हे मनुष्यो! उठो, जागो और श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर उस परब्रह्म परमेश्वर को जानो; क्योंकि ज्ञानीजन उस अध्यात्म पथ को छुरे की धार पर चलने के समान दुर्गम बताते हैं।

हिमालयी अस्मिता के सुलगते प्रश्न

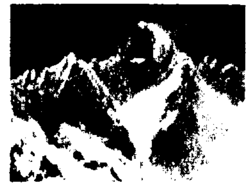

हिमालय देश का मुकुट है। इसका बड़ा महत्त्व है, परंतु आज समूचा हिमालय-क्षेत्र ही संकट में है। इसका प्रमुख कारण इस समूचे क्षेत्र में विकास के नाम पर अंधाधुंध बन रहे अनगिनत बाँध हैं।

दु:ख इस बात का है कि हमारे नीति-नियंताओं ने कभी भी इसके दुष्परिणामों के बारे में सोचा तक नहीं—उस स्थिति में भी जबकि अनेकों वैज्ञानिकों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि बाँध पर्यावरण के लिए भीषण खतरा हैं।

दुनिया के दूसरे देश अपने यहाँ से धीरे-धीरे बाँधों को कम करते जा रहे हैं। प्रश्न यह उठता है कि यदि यह सिलसिला इसी तरह जारी रहा तो इस पूरे हिमालयी क्षेत्र का पर्यावरण कैसे बचेगा। आज वैज्ञानिक, पर्यावरणविद् और समाजविज्ञानी सभी मानते हैं कि हिमालय की सुरक्षा के लिए सरकार को इस क्षेत्र में जल, जंगल और जमीन को बचाने के लिए पर्वतीय क्षेत्र के विकास के मौजूदा मॉडल को बदलना होगा।

हिमालय को प्रदूषण से बचाना आज की सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। इसलिए इस क्षेत्र में पारिस्थितिकी संरक्षण के लिए काम करने की महती आवश्यकता है। कारण, हिमालय पर पारिस्थितिकी का खतरा बढ़ गया है।

इस स्थिति में हिमालय पर पर्यावरण संरक्षण के लिए काम करना सबसे बड़ी सेवा है। हमें न तो पर्यावरण की चिंता है और न मानव जीवन की। इसी सोच के चलते हिमालय के अंग-भंग होने का सिलसिला आज भी थमा नहीं है और इसमें हिमालयी राज्यों ने अहम भूमिका निभाई है।

सिस्मिक जोन पाँच में होने के कारण इस क्षेत्र में भूकंप का खतरा हमेशा बना ही रहता है, फिर जल-विद्युत परियोजनाओं के कारण सुरंग बनाने हेतु किए जाने वाले विस्फोट के परिणामस्वरूप वहाँ रहने वालों के घर तो तबाह होते ही हैं, वहाँ के जलस्रोत भी खतरे में पड़ जाते हैं।

विशेषज्ञ मानते हैं कि हिमालयी क्षेत्र से निकलने वाली नदियों और वनों को यदि समय रहते नहीं बचाया गया तो इसका दुष्प्रभाव पूरे देश पर पड़े बिना नहीं रहेगा। यदि हिमालय बचेगा, तभी नदियाँ बचेंगी और तभी इस क्षेत्र में बसने वाली आबादी का जीवन भी सुरक्षित रह पाएगा। विकास के ढेरों दावों के बावजूद अभी भी हिमालय क्षेत्र में रहने वाली तकरीबन 80 फीसदी आबादी सरकारी योजनाओं के लाभ से वंचित है।

हिमालय से निकली नदियों की हमारे देश में हरित और श्वेत क्रांति में महती भूमिका रही है। इन्हीं नदियों पर बने बाँध देश की ऊर्जा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं, लेकिन विडंबना देखिए कि उसी हिमालय क्षेत्र के तकरीबन 40 से 50 फीसदी गाँव आज भी अँधेरे में रहने को विवश हैं। 60-65 फीसदी देश के लोगों की प्यास बुझाने वाला हिमालय अपने ही लोगों की प्यास बुझाने में असमर्थ है।

समूचे हिमालयी क्षेत्र में पीने के पानी की समस्या है। वहाँ की खेती तक मानसून पर निर्भर है और यदि मानसून समय पर नहीं आया तो खेती पानी के लिए तरसती है।

गौरतलब है कि पर्यावरण विनाश का सबसे ज्यादा प्रभाव सबसे पहले हिमालय पर ही पड़ता है। पर्यावरण से की गई छेड़छाड़ का सीधा असर यहीं पर होता है, जिसके कारण हिमालय हिलता है।

भूकंप, बाढ़ आदि आपदाएँ इसका जीता-जागता प्रमाण हैं। उत्तराखंड की भीषण त्रासदी भी इसी का प्रतीक है। इसमें दो राय नहीं कि देश के पूर्वोत्तर राज्यों, नेपाल और चीन से लगे सीमावर्ती इलाके का समूचा हिमालयी क्षेत्र लंबे समय से विनाशकारी भूकंपों की तबाही झेलता रहा है।

दरअसल यह पूरा-का-पूरा हिमालयी क्षेत्र भारतीय और यूरेशियन प्लेटों की टकराहट वाले भूगर्भीय क्षेत्र में आता है। भूगर्भ में यूरेशियन प्लेटों की टक्कर से भारतीय प्लेटें हर साल 45 मिलीमीटर की दर से नीचे खिसक रही हैं।

प्लेटों में टकराहट के दौरान दबाव से बनी ऊर्जा भूकंप के रूप में बाहर निकलती है। जब लंबे समय तक ऊर्जा बाहर नहीं निकल पाती तो सिस्मिक गैप यानी भूकंपीय अंतराल पैदा हो जाता है। नतीजतन बड़े विनाशकारी भूकंप का खतरा बढ़ जाता है।

बीते दिनों नेपाल में आया विनाशकारी भूकंप इसका प्रमाण है। इसलिए अब आवश्यकता इस बात की है कि हम इस हिमालयी क्षेत्र की पारिस्थितिकी विषमता की वजहों के हल तलाशें और ऐसे विकास को तरजीह दें, जिससे पर्यावरण की बुनियाद मजबूत हो और उसे व्यापक बनाने की दिशा में अनवरत प्रयास किए जाते रहें। तभी कुछ बदलाव की उम्मीद की जा सकती है। हिमालय को बचाकर ही हम अपने देश के पर्यावरण को बचा सकते हैं। ❑

एक व्यक्ति जंगल से गुजर रहा था। रास्ते में एक पानी का झरना मिला। उस झरने पर एक यक्ष का वास था। उसने उस व्यक्ति को पकड़ लिया और बोला—"वो उसे तभी छोड़ेगा, जब वह उसके प्रश्नों का सही उत्तर दे दे।" व्यक्ति ने हामी भरी। यक्ष ने पूछा—"इस सृष्टि में सबसे सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली प्राणी कौन है?" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—"निश्चित रूप से वह प्राणी मनुष्य है। वह चाहे तो अपनी प्रवृत्तियों को सुधारकर, व्यक्तित्व का परिष्कार कर अपनी श्रेष्ठ संभावनाओं को साकार कर सकता है, किंतु फिर भी वह निकृष्ट जीवन व्यतीत करना पसंद करता है।" यह सुन यक्ष संतुष्ट हुआ व उस व्यक्ति को उसने छोड़ दिया।

मूढ़भाव से युक्त होता है तामसिक तप

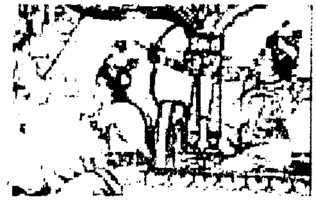

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की अठारहवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के अठारहवें श्लोक की विवेचना की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन को राजसिक तप के विषय में बताते हुए कहते हैं कि जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिए तथा दिखावे के भाव से किया जाता है, वह इस लोक में अनिश्चित और नाशवान फल देने वाला राजसिक तप होता है। इस प्रकार के तप के विषय में बोलते हुए भगवान एक तरह से यही स्पष्ट करते हैं कि ऐसे व्यक्ति में दंभ और अहंकार उसके व्यक्तित्व का केंद्रबिंदु होते हैं। जिस तरह से सात्त्विक प्रवृत्ति वाले मनुष्य के व्यक्तित्व के केंद्र में श्रद्धा एवं समर्पण होते हैं, वह किसी कार्य को इसलिए करता है क्योंकि उसके व्यक्तित्व के केंद्र में दंभ एवं अहंकार होते हैं और इसलिए उनके लिए तप भी अहंकार के प्रदर्शन का माध्यम बन जाता है। ऐसा व्यक्ति फिर यदि तप भी करता है तो वो इसलिए करता है, ताकि वो लोगों के सत्कार एवं मान की प्राप्ति का केंद्र बन सके। इसीलिए भगवान कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति फिर तप भी मात्र दिखाने के भाव से या आडंबर के उद्देश्य से करता है। सही पूछा जाए तो दंभ करना, घमंड करना, अभिमान करना, क्रोध करना, कठोरता रखना, अविवेकी होना—ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त व्यक्तित्व के लक्षण हैं। सम्मान, बड़प्पन, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करने के लिए अपनी वैसी स्थिति न होने पर भी वैसी स्थिति का प्रदर्शन करना दंभ है। लोग सद्गुणों को लेकर भी दंभी हो सकते हैं। अपने को धर्मात्मा, साधक, गुणवान आदि प्रकट करना या अपने में श्रेष्ठ गुणों को लेकर वैसा आचरण दिखाना, ये सब सद्गुणों को लेकर किया जाने वाला दंभ है।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि ऐसा तप राजसी होता है और उसका परिणाम अनिश्चित होता है। ऐसा इसलिए कि व्यक्ति के तप का परिणाम तो मिलता है; क्योंकि वो उसका कर्म है, पर उसके परिणाम में अंततः विनाश ही उसे मिलता है। जैसे रावण तप करता है तो वरदान पाता है; क्योंकि वो उसके तप का फल है, परंतु उसकी राजसिक प्रवृत्ति उस तप के परिणामस्वरूप उसे विनाश के मार्ग पर ले जाती है।]

इसके बाद भगवान कृष्ण कहते हैं कि—

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥ *19*॥

शब्द विग्रह—मूढग्राहेण, आत्मनः, यत्, पीडया, क्रियते, तपः, परस्य, उत्सादनार्थम्, वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥

►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄

शब्दार्थ—जो (**यत्**), तप (**तपः**), मूढ़तापूर्वक हठ से (**मूढग्राहेण**), मन, वाणी और शरीर की (**आत्मनः**), पीड़ा के सहित (**पीडया**), अथवा (**वा**), दूसरे का (**परस्य**), अनिष्ट करने के लिए (**उत्सादनार्थम्**), किया जाता है (**क्रियते**), वह तप (**तत्**), तामस (**तामसम्**), कहा गया है (**उदाहृतम्**)।

अर्थात जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से अपने को पीड़ा देकर अथवा दूसरों को कष्ट देने के लिए किया जाता है, वह तामसिक तप कहलाता है। कितना अद्भुत वचन है ये।

यहाँ भगवान एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण चिंतन प्रस्तुत करते हैं। स्मरण करें कि सात्त्विक तप का आधार निष्कामता एवं निरहंकारिता है। ऐसा तप जिसमें फल की आकांक्षा न हो, व्यक्तित्व के केंद्र में श्रद्धा, समर्पण एवं निष्ठा हों—वो तप सात्त्विक है। जहाँ फल की कामना हो, व्यक्तित्व के केंद्र में दंभ एवं अहंकार हों, वो तप राजसिक कहलाता है।

अब भगवान तामसिक तप की चर्चा करते हुए कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति जो मूढ़तापूर्वक अपने को पीड़ा देने में या दूसरे को कष्ट देने में संलग्न है, उसका तप तामसिक है।

ध्यान से देखें तो अनेकों लोग इसी स्व-पीड़ा को तप मानकर बैठ जाते हैं। अपने अहंकार के मद में, मूढ़ता के भाव में निमग्न होकर, कुछ लोग अपने को कष्ट देने की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं। कुछ काँटों पर लेट जाते हैं, कुछ अपने शरीर को नुकीले शस्त्रों से छेदने में लग जाते हैं—वे ये सोचते हैं कि हम कुछ ऐसा कर रहे हैं, जो अन्य कोई नहीं कर सकता। श्रीभगवान कहते हैं कि यह मूढ़ता के अतिरिक्त कुछ और नहीं।

उनका ऐसा करने के पीछे का चिंतन स्पष्ट है। राजसी तप करने वाले को कम-से-कम प्रतिष्ठा-सत्कार तो मिलता है, अनिश्चित ही सही, पर फल तो मिलता है—इस मूढ़ता में तो व्यक्ति मात्र सड़क पर लगे तमाशे में बदल जाता है। इसीलिए भगवान कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति जिद्दी व हठी भी होते हैं। उन्हें यह अनुभव भी हो जाए कि जो हम कर रहे हैं, वो मूढ़ता है—तब भी अपनी जिद को जीवित रखने के लिए वे इसे करते चले जाते हैं।

वे स्वयं को कष्ट देने में एवं दूसरों को तकलीफ देने में ही निमग्न रहते हैं। इस तरह के व्यक्तियों के लिए वे कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति तामसिक तप को करता है। यही सत्, रज व तम प्रवृत्ति वाले लोगों का अंतर है। फल की कामना न रखना सत्त्व का लक्षण है; क्योंकि वे जानते हैं कि कामनाएँ ही तो अशांति का गढ़ हैं।

ऐसे व्यक्तियों में ध्यान एवं तप फलित होते हैं, पर जो राजसिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं, वे ध्यान व तप करते समय और ज्यादा अशांत हो जाते हैं; क्योंकि उनके भीतर अशांति ही भरी है। इससे विपरीत तामसिक व्यक्ति न केवल अशांत होता है, बल्कि वह अन्य को भी अशांत कर देता है।

भगवान बुद्ध के समय एक राजकुमार था, उसका नाम था श्रोत्र। राजसी वातावरण में उसका लालन-पालन हुआ था। संयोगवश एक दिन उसे भगवान बुद्ध का उद्बोधन सुनने का अवसर मिला। उस उद्बोधन का उसके ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह राज-पाट त्यागकर भिक्षु बन गया।

भिक्षु बनते ही उसके जीवन की गति दूसरी धुरी की ओर मुड़ गई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसने पूरे संसार के प्रति ही बगावत कर दी हो। बाकी के लोग सामान्य पथ पर चलते तो वहीं श्रोत्र कँटीले पथ पर चलता। अन्य लोग सामान्य भोजन करते तो वह अन्न-जल त्यागकर बैठ जाता।

स्वाभाविक था कि उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। भगवान बुद्ध ने उसे मिलने बुलाया और उससे पूछा—"श्रोत्र! तुम्हारे ऐसा करने के पीछे का उद्देश्य क्या है?" श्रोत्र बोला—"भगवन्! जीवन में संतुलन की प्राप्ति ही मेरी आकांक्षा है।" भगवान बुद्ध ने पुनः प्रश्न किया—"श्रोत्र! वीणा के तार यदि ज्यादा कसे हों या ज्यादा ढीले हों तो क्या उसमें से संगीत आएगा?" "श्रोत्र ने न में उत्तर दिया।" भगवान बुद्ध बोले—"जीवन को भी न ज्यादा कसो, न ज्यादा ढीला छोड़ो। संतुलन ही साधना है।"

तो इस तरह मूढ़ व्यक्ति के जीवन में कोई संगीत, संतुलन जन्म नहीं ले पाते; क्योंकि उसकी ऊर्जा अपने आप को पीड़ा देने में ही चली जाती है। यही मूढ़ चित्त के व्यक्ति के जीवन का मुख्य आधार है। उसको अपने सुख से ज्यादा दूसरों को दुःख देने में या स्वयं को पीड़ा देने में रस आता है। उसको स्वयं कुछ मिले-न-मिले, उसे दूसरों का झपटने में ज्यादा रस होता है। मूढ़ात्मा, तामसिक व्यक्ति दूसरे को दुःख देने में अपना सुख मानता है। राजसिक व्यक्ति स्वयं को सुख देने में सुख मानता है; जबकि सात्त्विक व्यक्ति दूसरों को सुख देने में अपना सुख मानता है।

श्रीभगवान यहाँ कहते हैं कि तामसिक मनुष्यों में मूढ़भाव की प्रधानता रहती है। अतः जिसमें शरीर को, मन को कष्ट हो, उसी को वे तप मानते हैं। साथ ही वे तप का परिणाम दूसरों को कष्ट देने में, अनिष्ट करने में लगाना चाहते हैं। इसीलिए हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण इत्यादि व्यक्तित्व तपस्या करने के बाद उससे प्राप्त सिद्धि का दुरुपयोग दूसरों को कष्ट देने में करने लग जाते हैं। ऐसे लोगों का तप तामसिक तप होता है—ऐसा श्रीभगवान इस श्लोक में कहते हैं एवं यह कहते हैं कि यह तप तामसिक होने के कारण सात्त्विक परिणाम नहीं दे पाता है।

(क्रमशः)

****

नसीरुद्दीन एक राज्य के बादशाह थे, परंतु वे अवकाश के समय टोपियाँ बनाते थे एवं उनसे जो धन प्राप्त होता था, उसी से अपना खरच चलाते थे। बादशाह की बेगम स्वयं हाथ से खाना पकाया करती थीं। एक बार खाना पकाते हुए उनका हाथ जल गया। वे सोचने लगीं कि एक बादशाह की बेगम होते हुए भी उन्हें एक नौकर तक नहीं मिलता।

उन्होंने अपने पति से कहा—"आप इतने बड़े राज्य के स्वामी हैं, क्या आप हमारे लिए भोजन पकाने वाले एक नौकर का भी प्रबंध नहीं कर सकते?"

नसीरुद्दीन ने उत्तर दिया—"बेगम! आपके लिए नौकर रखा जा सकता है, बशर्ते कि हम अपने सिद्धांतों से डिग जाएँ। राज्य, धन, वैभव तो प्रजा का है। हम तो उसके संरक्षक मात्र हैं। उसका उपयोग अपने लिए करें, यह तो बेईमानी होगी।"

उनकी सिद्धांतनिष्ठा से पत्नी अभिभूत हो गईं और पूर्ण समर्पण के साथ पति के जीवनलक्ष्य में सहयोग करने लगीं।

****

दांपत्य प्रेम और समर्पण के प्रतीक सारस पक्षी का रोचक संसार

पक्षियों में सारस एक विशिष्ट स्थान रखता है, जो अपनी कुछ विशेषताओं के कारण ध्यान आकर्षित करता है। यह उड़ान भरने वाला सबसे बड़ा पक्षी है, जो भारत में सबसे अधिक गंगीय क्षेत्र में पाया जाता है। दांपत्य प्रेम और समर्पण के प्रतीक सारस पक्षी का अपना विशिष्ट सांस्कृतिक महत्त्व भी है।

संस्कृत के प्रथम महाकाव्य वाल्मीकीय रामायण की प्रथम कविता का श्रेय सारस पक्षी को ही जाता है। भारत में सारस को क्रौंच पक्षी के नाम से भी जाना जाता है। रामायण की प्रथम कविता का श्रेय इसी क्रौंच पक्षी को जाता है।

महर्षि वाल्मीकि एक बार राह से गुजर रहे थे, तो मार्ग में इनकी नजर प्रेमक्रीड़ा में मग्न क्रौंच पक्षी के जोड़े पर पड़ी। तभी एक शिकारी ने तीर से एक सारस पर निशाना साधा और वह पक्षी तड़प-तड़पकर मर गया। इसके वियोग में शोकविह्वल दूसरे पक्षी की चीत्कार से वाल्मीकि का कवि हृदय व्यथित हुआ व उनके मुख से सहज ही ये शब्द प्रस्फुटित हुए—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

अर्थात हे निषाद! तुम अनंत काल तक प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सको, क्योंकि तुमने बिना किसी अपराध के प्रणय क्रीड़ा में मग्न क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से एक का वध कर डाला है। श्लोक की यह रचना आगे वाल्मीकीय रामायण के रूप में विस्तार पा गई है।

आश्चर्य नहीं कि सारस पक्षी जोड़े में रहते हैं। इनके बीच का आपसी प्यार जगत् प्रख्यात है। माना जाता है कि यदि जोड़े में एक की मृत्यु हो जाए, तो दूसरा जीवन भर अकेला ही रहता है और भूखा रहकर अपने प्राण तक त्याग देता है। इस तरह सारस के युग्म को प्रेम और समर्पण का प्रतीक माना जाता है, जो जीवनभर एक साथ रहते हैं। संभवतः इसीलिए भारत में गृहप्रवेश के दौरान इनके दर्शन को बहुत शुभ माना जाता है।

कई संस्कृतियों में सारस को एक पावन पक्षी माना जाता है, जो अनंत जीवन का प्रतीक है। माना जाता है कि यह पुण्य आत्माओं के स्वर्ग तक का मार्ग प्रशस्त कराता है। मालूम हो कि सारस उड़ने वाले पक्षियों में सबसे ऊँचा एवं बड़ा पक्षी भी है। हालाँकि शुतुरमुर्ग सारस से बड़ा एवं भारी पक्षी होता है, लेकिन यह उड़ नहीं सकता। जबकि सारस एक समय में 500 किमी तक उड़ान भर सकता है। सामान्यतया 40 फीट तक उड़ान भरते हैं।

विश्वभर में सारस की कुल 8 प्रजातियाँ हैं, जिनमें से 5 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती हैं; जिनमें साइबेरियन सारस लगभग लुप्तप्राय हैं। कभी भारत में सबसे अधिक साइबेरियन सारस पाए जाते थे, जो वहाँ सरदी पड़ने पर हजारों किलोमीटर का लंबा रास्ता तय करते हुए 35 से 40 हजार फीट ऊँचाई पर उड़ान भरते हुए भारत आते थे। अक्टूबर माह में ये भारत में प्रवास करते थे।

भारत में यह प्रजाति 2002 में ही विलुप्त हो गई है। भारतीय उपमहाद्वीप में आज सारस पक्षी उत्तरी और मध्य भारत, नेपाल और पाकिस्तान के आर्द्रभूमि और दलदली क्षेत्र तक सीमित रह गए हैं।

यह विशालकाय पक्षी खड़े होने पर 5 से 6 फीट तक ऊँचाई लिए होता है और भार में 6 से 7 किलो तक होता है। इसकी दो टाँगें बहुत लंबी होती हैं व रंग हलका गुलाबी होता है। ऊपरी हिस्से में सफेदी अधिक होती है।

भारत में पाए जाने वाले सारस के सर व गरदन लाल रंगत लिए होते हैं, जो इसको विशिष्ट पहचान देते हैं। टाँगों की तरह सारस की चोंच काफी लंबी होती है, जिससे यह भोजन ग्रहण करता है और क्रोधित होने पर लंबी चोंच से सारस काफी घातक प्रहार कर सकता है।

गरदन भी टाँगों की तरह लंबी होती है, जो घुमावदार होती है व दिखने में बहुत सुंदर लगती है। इसके मोड़ने के साथ यह तरह-तरह की भाव-भंगिमाओं को व्यक्त करता है। प्रसन्न होने पर गरदन मोड़ता है, पंखों को फैलाकर नृत्य करता है। इसके पंखों का फैलाव 250 सेमी तक होता है।

सारस कम पानी में रहकर ही भोजन करते हैं व दलदली इलाकों में पाए जाते हैं। इनको अधिकांशत: तालाबों, सरोवरों, झीलों व खेतों में कलरव करते व चुगते देखा जा सकता है। ये आपस में वार्त्तालाप करने के लिए तरह-तरह की आवाजें निकालते हैं। सारस समूह में रहना पसंद करते हैं।

सारस वैसे तो शाकाहारी पक्षी है, जो पेड़-पौधे, कंद व बीजों को खाता है, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर कीड़े, छोटे कशेरुकों व मछलियों को भी खा जाता है। भारत में मुख्यत: गंगा के मैदानी क्षेत्रों तथा इसी प्रकार के समान जलवायु वाले अन्य भागों में समूह में विचरण करने वाला सारस पक्षी यहाँ का स्थायी निवासी है, जो एक ही भौगोलिक क्षेत्र में रहना पसंद करता है।

यह उत्तर प्रदेश का राज्य पक्षी भी है। नर और मादा में अंतर करना कठिन होता है, क्योंकि दोनों बिलकुल एक जैसे दिखते हैं, हालाँकि मादा का आकार थोड़ा छोटा होता है। इसके प्रजनन का समय वर्षा ऋतु में होता है। मादा एक बार में अधिकांशत: दो से तीन अंडे देती है, लगभग एक माह बाद इन अंडों से बच्चे निकलते हैं, जिनको दोनों मिलकर सेते हैं। देख-भाल का जिम्मा अधिकांशत: नर सारस का होता है। दो वर्ष के होने पर सारस के बच्चे उड़ने योग्य हो जाते हैं। इनकी औसतन आयु 15 से 18 वर्ष की होती है।

सारस पक्षी विश्व में विलुप्ति के कगार पर हैं। विश्वभर में 35 से 37 हजार ही इनकी संख्या शेष बची है। कई देशों में ये पूर्णतया विलुप्त हो चुके हैं। मलयेशिया, फिलीपिन्स और थाइलैंड में सारस पक्षी की यह प्रजाति पूरी तरह से विलुप्त हो चुकी है।

आदित्यो ह वै प्राणः।

अर्थात वह सूर्य ही सृष्टि का प्राण है।

भारत में कभी यह पक्षी उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, गुजरात, मध्य प्रदेश और असम के धान के खेतों में आमतौर पर देखा जाता था, लेकिन आज इनकी आबादी घट रही है, भारत में केवल 15 से 20 हजार ही शेष हैं, जिनमें से अधिकांश उत्तर प्रदेश में हैं।

इनकी जनसंख्या घटने का मुख्य कारण जलवायु-परिवर्तन और शिकार है, साथ ही अंधाधुंध विकास और प्राकृतिक परिवेश की कमी भी है। वैश्विक स्तर पर इसकी संख्या में हो रही कमी को देखते हुए इसे संकटग्रस्त प्रजाति घोषित किया गया है। भारतवर्ष में भी विकसित स्थानों पर यह पक्षी लुप्तप्राय: हो चला है। इस पावन पक्षी के संरक्षण के लिए हर स्तर पर विशिष्ट प्रयास की आवश्यकता है। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

इस युग के भगीरथ

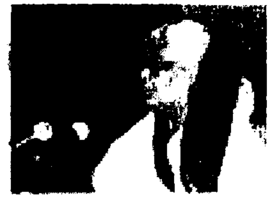

[उत्तरार्द्ध]

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमवंदनीया माताजी अपने इस हृदयस्पर्शी उद्बोधन में समस्त गायत्री परिजनों को यह स्मरण दिलाती हैं कि परमपूज्य गुरुदेव ही इस युग के भगीरथ हैं। वंदनीया माताजी कहती हैं कि जिस तरह से भगीरथ ने धरती पर गंगा के अवतरण का अलौकिक पुरुषार्थ संपन्न कर दिखाया था, ठीक उसी तरह से इस युग में परमपूज्य गुरुदेव ने ज्ञान की गंगा को अवतरित करने का महती पुरुषार्थ संपन्न किया है। परमवंदनीया माताजी मथुरा से गुरुसत्ता की विदाई का उदाहरण देते हुए बताती हैं कि अनेकों भावनाशील परिजन पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी के पीछे न जाने कितने दिनों तक चलते हुए आए, ताकि उनको जाने से रोक सकें। वंदनीया माताजी कहती हैं कि इतना प्रेम मात्र उन्हीं को मिल सकता है, जिन्होंने अपने जीवन को तपाया हो और हमें भी पूज्य गुरुदेव की तरह अपने जीवन को तपाने का पुरुषार्थ करना चाहिए। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को ....

हमारे बच्चे हैं आप

इसके लिए आप लोगों को जो सर्वत्र लाखों की संख्या में फैले हुए हैं, एकत्रित किया है, बुलाया है। लाखों की संख्या में कहूँ या करोड़ की संख्या में कह दूँ तो क्या अतिशयोक्ति है? जितने यज्ञ हुए हैं, उनमें ज्यादातर मैंने सुना है कि दो-दो लाख की उपस्थिति हुई है, तो ये कितने हो गए? एक करोड़ व्यक्ति हो गए कि कुछ ज्यादा ही हो गए होंगे। अभी तो आप देखते जाइए, जो पंजीकृत साधक हैं, वे इतने हैं कि दो लाख से ज्यादा तो वे हैं, जो नियमित उपासना करते हैं।

वे कौन से हैं? वे हमारे बेटे हैं, वे हमारी बेटियाँ हैं, जो हमने पैदा किए हैं। अरे! आपके माँ-बाप ने पैदा किया होगा? हाँ, हम कब कहते हैं कि नहीं किया। आपके माँ-बाप ने पैदा किया; लेकिन आप यह क्यों नहीं मानते कि आपको हमने पैदा किया है। आपके माँ-बाप ने पैदा किया होगा, लेकिन हमने विचारों से और सिद्धांतों से, भावनाओं से आपको पैदा किया है। आपके अंदर वह चिनगारी जलाई है, वह देवत्व पैदा किया है, जो आपके माता-पिता नहीं कर सकते थे। एक लड़का इन्हीं में बैठा है जरा आ गया हड़बड़ में। उसने कभी आज्ञा सुनी, सो भागा आया। इस बात को बहुत दिन हो गए।

गुरुजी ने कह दिया कि तू चिंता मत कर, बेटे! हम तेरे साथ हैं और अब नहीं, जन्म-जन्मांतरों

तक साथ हैं, देखें तेरा क्या बिगड़ता है ? मैं समझती हूँ कि भूखा तो रहा नहीं होगा और वह रहने वाला भी नहीं है। वह एक ही नहीं है। मैं तो आप सबके लिए कह रही हूँ। जो हमसे जुड़े हैं, उनसे हमारा वायदा है कि बेटे! आपके लिए हम कहीं से भी लाएँगे, जरूर लाएँगे, इसमें कोई शक नहीं।

पहले दिन मैंने इन बच्चों से यह कहा था कि बेटे! हमने दो काम के लिए आपको बुलाया है। पहला तो यह कि हम आपको पहलवान बनाएँगे, कैसा पहलवान ? बड़ा मोटा-तगड़ा पहलवान कि जिधर आप जाएँ, बस पछाड़ते जाइए, आप कुश्ती में पछाड़ते जाइए। ऐसा पहलवान बनाएँगे माताजी ? हाँ बेटे! बिलकुल ऐसा ही पहलवान बनाएँगे। मैंने जरा हँसकर यह भी कह दिया तो फिर आप ये अंदाजा लगाते होंगे कि माताजी जैसे हो जाएँगे ?

जीवात्मा मजबूत बनाएँगे

मैंने कहा बेटे! फिर तू शरीर की बात ले आया, अरे शरीर नहीं आत्मा की दृष्टि से, जीवात्मा की दृष्टि से आपको हम पहलवान बनाएँगे। आपको हम शक्ति देंगे, आपको ज्ञान देंगे, आपको न मालूम हम क्या-क्या देंगे ? आपको पहलवान बनाएँगे कि आप जहाँ जाएँगे, वहाँ आपका कोई मुकाबला नहीं कर सकता। आपका कोई मुकाबला कर जाए, तो आप हमसे कहना।

आप हिम्मत तो रखिए, विश्वास तो रखिए। गुरुजी ने विश्वास किया, हमने विश्वास किया है, यह विश्वास हमारे जीवन में काम कर रहा है कि हमारा कोई भी संकल्प अधूरा नहीं रहता। सारे संकल्प हमारे पूरे होते रहे। आपके भी होंगे। जिस उद्देश्य के लिए यह शक्तिपीठें और प्रज्ञापीठें बनाई गई हैं और जो निरंतर खून-पसीने से इनको सींचा जा रहा है, बनाया जा रहा है। उन्होंने जाने क्या-क्या आडंबर खड़ा कर लिया है, जाने क्या-क्या ढोंग-ढपाड़े उसमें शुरू कर दिए हैं। इसके लिए इन्हें नहीं बनाया गया। इसके लिए बनाया है कि हर व्यक्ति आए और प्रेरणा लेता हुआ जाए। रोता हुआ आए और हँसता हुआ वापस जाए। उसमें क्रियाकलाप होने चाहिए, जैसा कि आपके शांतिकुंज में हो रहा है, हूबहू हमने इसी के लिए बनाया था।

गायत्री माता का अवतरण

अब घुमा-फिराकर ज्यादा मैं समय नहीं लूँगी, बस, मुझे तो इतना कहना था कि आज गायत्री माता का जन्म है, माँ गायत्री का अवतरण दिवस है। उस जननी का अवतरण दिवस है। जिसका कि जिस किसी ने भी आँचल पकड़ा, वो धन्य हो गया। जैसे हम धन्य हो गए, आप भी हमारे तरीके से धन्य हो सकते हैं।

उस माँ के आँचल की छाया के नीचे आप भी धन्य हो सकते हैं। आपको भी गायत्री माता इसी तरीके से छाती से लगा सकती है, जैसे कि हमको

व्यास जी ने गणेश जी से महाभारत लिखवाया। महाभारत पूरा हुआ तो व्यास जी ने गणेश जी से पूछा—''महाभाव! मैंने 24 लाख शब्द बोलकर लिखाए लेकिन आश्चर्य है कि इस बीच आप एक शब्द भी न बोले। सर्वथा मौन बने रहे।''

गणेश जी ने उत्तर दिया—''बड़े कार्य संपन्न करने हेतु शक्ति की आवश्यकता होती है और शक्ति का आधार संयम है। संयम ही समस्त सिद्धियों का प्रदाता है। वाणी का संयम न रख सका होता तो आपका ग्रंथ तैयार कैसे होता ?''

लगाती है। हर दु:ख-मुसीबत में आपको सहारा मिलता रहेगा, आपको प्रेरणा मिलती रहेगी, आपको मार्गदर्शन मिलता रहेगा। आप कभी निराश मत होना। आप हमारी संतान हैं, तो आप हमारे तरीके से रहिए न। फिर निराशा का क्या काम? निराश क्यों होंगे? आप बुज़दिल क्यों होंगे? आप हमारी तरह से उदार होइए। हमारी तरह से पिघलने वालों में से रहिए, हमारी तरह से आप करुणामय रहिए और आप सर्वत्र बिखर जाइए। जिसके लिए गुरुजी ने बीड़ा उठाया है कि अनाचार और अत्याचार हट करके ही रहेंगे।

जो हमारी बालिकाएँ आएदिन दहेज के कारण मरती रहती हैं, कोई आग लगा लेती हैं, कोई फाँसी लगा लेती हैं, किसी को घर में ही ससुराल वाले मार देते हैं। क्या होता है? बेटे! हमारे हृदय में अग्नि जैसी धधकती है और हमको यह मालूम पड़ता है कि उनकी बेटियों के ऊपर नहीं, हमारी बेटियों के ऊपर आपत्ति आ गई है। हमारी बेटियाँ हैं, क्या इसके लिए आप लोग यह नहीं कर सकते कि आप गायत्री परिवार के लोग आपस में अपनी बच्चियों की, लड़कों की शादी कर लें।

नहीं साहब! लड़की है, तब तो हम दीन-हीन हैं, भिखारी हैं। हमारी लड़की की शादी कैसे होगी? लड़का होगा तो नहीं साहब! ऐसा है हमारी बुआ यों कहती थीं कि हमारा जो फलाना लड़का था, उसकी शादी में तो इतने लाख रुपये आए थे, हम कैसे कम ले लेंगे? अरे भिखारी! तुझे ऐसे ही रहना आता है क्या? छोड़ इस दीनता को, भिखारीपन को छोड़।

संत की संतान हैं आप

जो कुछ भी आप कर सकते हैं, करें। आपकी जबान काम नहीं देती है तो क्या? हाथ-पाँव तो काम देते हैं, आपका श्रम काम देता है, आपका पसीना काम देता है। अभी हमको एक जमीन खरीदनी है, उसे हम चार-छह दिन में खरीदेंगे। दस-पाँच दिन की देर है, खरीद लेंगे। संकल्प पूरा हो जाएगा। अरे! तुझे मालूम नहीं है, अब तक के संकल्प पूरे हुए हैं, तो क्या अब पूरे नहीं होंगे? बिलकुल होंगे। अब देखना होता है कि नहीं होता है, कुछ तो होंगे।

हम तो चाहते हैं कि आपको भी श्रेय मिले। आप उस संत की संतान हैं कि गर्व से सिर ऊँचा करके यह कह सकें कि किसके बच्चे हैं? अरे साहब! हम उन गुरुजी के बच्चे हैं, कौन से? वे जिन्होंने तपश्चर्या की थी, उनके ये बच्चे हैं। उन्होंने जो तपश्चर्या की है, वह कोई लाखों में एक करता है। ऐसी तपश्चर्या गिने-चुनों ने की होगी। किसने की होगी? जिनको अरविंद ऋषि भी कह सकते हैं और भी कह सकते हैं और दो-पाँच का नाम ले सकते हैं, बस, खतम। बेटे! गुरुजी ने वह तपश्चर्या की है, जो राष्ट्र की कुंडली जागरण के लिए है, उसमें हर हालत में आपका योगदान मिलना चाहिए।

आज का दिन आत्मचिंतन का दिन है। गुरुजी ने गायत्री तपोभूमि का निर्माण किया। यहाँ का निर्माण किया। सबका उद्देश्य एक ही था कि गायत्री माता के बारे में सबको जानकारी देना। जानकारी ही नहीं देना; बल्कि माँ को इनके हृदयकमल पर बैठाना, इनको विश्वास दिलाना कि हमको देख लीजिए। नहीं साहब! हम जप करेंगे, तो हमारी औरत विधवा हो जाएगी। अच्छा तेरी औरत विधवा हो जाएगी? लड़के-लड़कियाँ कहते रहते हैं कि साहब! जो कोई जप करती है, सो विधवा हो जाती है, अत: ब्राह्मण करेगा और कोई नहीं करेगा।

ब्राह्मण की बपौती है, जो ब्राह्मण ही करेगा, क्यों? माँ की उपासना कोई और क्यों नहीं करेगा?

माँ के लिए, भगवान के लिए, तो बेटे और बेटी बराबर होते हैं। उसमें कोई जाति-बिरादरी नहीं होती। यह मनुष्य ही ऐसा कमीना है कि इसके ही अंदर जाति-बिरादरी होती है। न मालूम क्या होता है?

इसी ने सब चौपट किया है। चौपट इनसान ने नहीं किया है, देवत्व ने नहीं किया है, उसे हैवान ने चौपट किया है। औरत विधवा हो जाती है? बिलकुल नहीं होती और होती है, तो बेटे आगे-पीछे तो सबका ही होता है, किसका नहीं होता? किसी का साथ होगा, किसी का साथ नहीं होगा। आपके सामने हम बैठे हैं, कितनी बड़ी जिंदगी पार कर ली है।

बेटे! उसी गायत्री माता के सहारे कर ली है। एकनिष्ठ और श्रद्धा के साथ जीवन-नैया को पार लगाते हुए चले गए। थोड़ा-सा समय और रह गया है, सो वह भी पूरा हो जाएगा। आप भी इस संबल को मत छोड़ना। इस आँचल को मत छोड़ना और उस गोद को मत छोड़ना, जिससे कि आप निहाल होते हों, उस गोद को ठुकराना मत। उस माँ के आँचल को छोड़ मत देना, छोड़ दिया, तो आप डूब जाएँगे।

गुरुजी की नाव में बैठ जाएँ

आप उसी तरीके से उठिए और नाव में बैठ जाइए। किसकी नाव में बैठ जाइए? बेटे! गुरुजी की नाव में बैठ जाइए। यह मल्लाह न कभी डूबता है, न किसी को डूबने देता है। कोई खुद डूबेगा, तो बेटे! हम क्या कर सकते हैं। हम किसी के भाग्य के विधाता हैं, भगवान हैं? नहीं बेटे! भगवान तो जड़ और चेतन में, सारे में समाया हुआ है। हम वह बात कैसे कह सकते हैं? लेकिन शायद एक सच्चे इनसान जरूर हैं, हम लाखों-करोड़ों के पिता और माता हैं।

आप माँ के हृदय की पीड़ा को, पिता के हृदय की पीड़ा को नहीं जान पाएँगे। बच्चे के ऊपर कोई दु:ख-कष्ट आता है, तो माँ तिलमिला जाती है और बाप बच्चे को लिए-लिए घूमता है। जहाँ कहीं भी कोई कहेगा—हकीम, डॉक्टर, बड़े-से-बड़ा जो भी औकात होती है, वह कभी चूकती नहीं है और माँ-बेटे को कलेजे से लगाकर सारी रात बैठी रहती है। दिन को चैन नहीं आता, रात को नींद नहीं आती है, मेरा बच्चा-मेरा बच्चा कहती रहती है।

यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्
यस्मानन्नाणीयो न ज्यायोस्ति किंचित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि
तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वं॥

अर्थात जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, जिनसे बढ़कर कोई न तो अधिक सूक्ष्म है और न महान ही है तथा जो अकेले ही वृक्ष की भाँति निश्चल भाव से प्रकाशमय आकाश में स्थित हैं, उन परमपुरुष परमेश्वर शिव से यह संपूर्ण जगत् परिपूर्ण है।

बेटे! हम भी इसी तरीके से कहते हैं कि पीड़ा-पतन से जो हमारे बच्चे ग्रसित हैं, हमारी भी जीवात्मा यही कहती रहती है कि इनको निकालना चाहिए।

ये फँस गए, दलदल में चले गए। ये कीचड़ में फँस गए इनको निकालो। किस तरीके से निकालें? हम बड़े साहस और उम्मीद के साथ उन

बच्चों को निकालते हैं, खड़ा करते हैं। तब भी तू कीचड़ में जाए, तो तेरी मरजी, जा बेटा! तुझे कीचड़ ही पसंद है, तो तू कीचड़ में जा, हमको कुछ नहीं करना।

हम सोच लेंगे कि यह था ही नहीं, या होते ही मर गया? सब्र करते हैं कि नहीं करते? हम तो कर लेंगे, पर तू नहीं कर पाएगा। तू उस पिता का विश्वास और उस पिता का अनुदान, उस पिता की करुणा और दया तथा माँ का प्यार और दुलार और वह शक्ति तू नहीं पा सकता, जो पाना चाहिए। इसी के लिए आप लोगों को आज यहाँ एकत्रित किया है ।

आज गंगा दशहरा है। आप उस ज्ञान की गंगा में भावनात्मक स्नान करना, जो गुरुजी ने बहाई है। आप भावना करना कि हम पवित्र हो रहे हैं, हम स्वच्छ हो रहे हैं और हम निर्मल हो रहे हैं। ऐसे, जैसे कि निर्मल गंगा जो कि पापों को अपने ऊपर ले लेती है और सबके पापों को दूर करती है। आप गंगा नहाने जाना चाहें तो जाना, चाहे मत जाना, यह आपकी इच्छा है, पर इस गंगा में जरूर नहाना, जिसमें कि आपकी जीवात्मा का परिष्कार है। इसमें आपका बौद्धिक परिष्कार है। ये दोनों ही इसमें जुड़े हुए हैं। आज का दिन आपका भावनात्मक समर्पण का दिन है, आपके चिंतन का दिन है। इसमें सारे दिन आप सराबोर रहिए और उस आनंद का लाभ लीजिए, जिसका कि आनंद अब तक इतनी बड़ी जिंदगी में हमने लिया है और लेते रहेंगे और ले करके आप सबको बाँटते रहेंगे। बस, इन शब्दों के साथ गुरुजी की और हमारी ओर से बार-बार आपको प्यार, दुलार और आशीर्वाद।

॥ ॐ शांतिः ॥

घनघोर अँधेरे में झरना अपने अविरल प्रवाह से कल-कल करता बहा चला जा रहा था। मार्ग में मिली एक पहाड़ी उपत्यिका ने पूछा—"निर्झर! तुम लगातार चले जा रहे हो। तुम्हें थकावट नहीं आती क्या? जरा ठहरो तो। यहाँ विश्राम कर लो।"

उपत्यिका पर एक प्रेमपूर्ण दृष्टि डालते हुए झरने ने कहा—"बहन! मुझे जिस महासागर से मिलना है, वह तो अभी मीलों दूर है। अपने उद्देश्य को प्राप्त किए बिना इस जीवन का कोई मूल्य नहीं।" उपत्यिका उसे प्रशंसापूर्ण दृष्टि से देखती रह गई।

सांस्कृतिक प्रतिनिधियों की उपस्थिति से सुगंधित हुआ विश्वविद्यालय

वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के प्रणेता पूज्य गुरुदेव के देखे गए दिव्य स्वप्न के साकार स्वरूप देव संस्कृति विश्वविद्यालय का जीवंत दर्शन आज समूचा विश्व कर रहा है। युगऋषि के संकल्प बल व उनके प्राण से सिंचित देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने अध्यात्म को विज्ञान की कसौटी पर कसने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। इस क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के याज्ञवल्क्य शोध संस्थान द्वारा एक महत्त्वपूर्ण शोध किया गया है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा किए गए इस शोध में यज्ञ के एयर माइक्रोबायोम पर पड़ने वाले असर के एक अध्ययन में यह पाया गया कि एक विशेष प्रकार का तत्त्व यज्ञ के समय दिखाई देता है, जो न यज्ञ से पहले होता है और न यज्ञ के कुछ घंटे बाद। इस तत्त्व के गुण-धर्म, प्रकार और प्रयोग पर आगे शोध किया जा रहा है।

विश्वविद्यालय परिसर में आयोजित हुए कार्यक्रमों की शृंखला में रोटरी इंडिया लिट्रेसी मिशन के तहत एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम का उद्‌देश्य भारत के प्रत्येक नागरिक को साक्षर करना है। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि अखिल विश्व गायत्री परिवार और रोटरी इंडिया लिट्रेसी मिशन एक साथ मिलकर कार्य करें इससे खुशी की बात और कुछ हो ही नहीं सकती है। पूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के संरक्षण में अखिल विश्व गायत्री परिवार यह अनूठा कार्य बहुत पहले से करता चला आ रहा है और वर्ष 2026 तक का हमारा उद्‌देश्य है कि भारत का हर नागरिक शिक्षित हो।

इस कार्यक्रम में रोटरी इंडिया लिट्रेसी मिशन के अंतरराष्ट्रीय अध्यक्ष श्री शेखर मेहता, पीडीजी श्री रवि लैंगर, एडल्ट लिट्रेसी कमेटी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री रमेश, सीईओ श्री विश्वजीत घोष एवं पीडीजी श्री हेमंत अरोरा ने अपने रोटरी इंडिया लिट्रेसी मिशन की गतिविधियों से लोगों को परिचित कराया। इस अवसर पर शांतिकुंज के सभी वरिष्ठ प्रतिनिधियों समेत विश्वविद्यालय के समस्त विभागाध्यक्ष, संकायाध्यक्ष एवं आचार्यगण भी उपस्थित रहे।

भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के अंतर्गत स्पिक मैके के माध्यम से विश्वविद्यालय में वायलिन कलाकार पद्मश्री ए. कन्याकुमारी जी का आगमन हुआ। पद्मश्री ए. कन्याकुमारी जी ने शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति के माध्यम से सारे श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। कार्यक्रम की शुरुआत माननीय कुलपति जी ने गुरुसत्ता के समक्ष दीप प्रज्वलित कर की। शास्त्रीय संगीत के इस कार्यक्रम में आचार्यगण एवं छात्र-छात्राएँ उपस्थित रहे।

विदित हो कि स्पिक मैके अर्थात सोसायटी फॉर दि प्रमोशन ऑफ इंडियन क्लासिकल म्यूजिक एंड कल्चर अमंग असिस्टेंट यूथ—एक गैर राजनीतिक, राष्ट्रव्यापी, स्वैच्छिक आंदोलन है। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की युवा पीढ़ी को भारतीय संस्कृति से जोड़ने के लिए एक सांस्कृतिक मुहिम है। इसके माध्यम से देश के कुशल कलाकारों

द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं लोकनृत्य, कविता, रंगमंच, पारंपरिक चित्रों, शिल्प एवं योग से जुड़े कार्यक्रमों को मुख्य रूप से विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में प्रस्तुत किया जाता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में जनपद स्तर पर गाइड प्रशिक्षण कार्यशाला का भी आयोजन किया गया। उत्तराखंड सरकार एवं गढ़वाल विश्वविद्यालय के पर्यटन विभाग के साथ-साथ इंटेक संस्थान द्वारा संयुक्त रूप से इस 10 दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। जिला पर्यटन कार्यालय के साथ-साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यटन विभाग द्वारा भी इस कार्यशाला में सक्रिय भूमिका निभायी गई।

कार्यशाला के शुभारंभ में प्रतिकुलपति जी ने कहा कि गाइड संस्कृति के संवाहक होते हैं और अगर इनका प्रशिक्षण संस्कृति की आध्यात्मिक धारा के साथ हो तो ये भारतीय संस्कृति एवं धरोहर के संगम हो सकते हैं। कार्यक्रम की मुख्य अतिथि श्रीमती पूनम चंद, सह-निदेशक पर्यटन विभाग ने कहा कि संस्कृति की रक्षा कुशल एवं सांस्कृतिक रक्षकों द्वारा हो सकती है। जिला पर्यटन विकास अधिकारी श्री सुरेश चंद्र यादव ने उत्तराखंड पर्यटन की चर्चा की।

कार्यक्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं आस-पास के अनेकों प्रतिभागी एवं शिक्षक विद्यमान थे। कार्यक्रम के अंत में धन्यवाद ज्ञापन करते हुए पर्यटन विभाग के विभागाध्यक्ष ने सभी का धन्यवाद ज्ञापन किया।

विश्वविद्यालय परिसर में इंडोनेशिया के पद्मश्री श्री इंद्र उदयन जी का भी आगमन हुआ। आगमन के उपरांत उन्होंने प्रतिकुलपति जी से भेंट की एवं विविध विषयों पर चर्चा हुई। तत्पश्चात श्री इंद्र उदयन जी ने विश्वविद्यालय में स्थित प्रज्ञेश्वर महाकाल मंदिर का दर्शन कर संपूर्ण विश्वविद्यालय का भ्रमण कर विश्वविद्यालय में हो रही गतिविधियों की सराहना की। इसी श्रृंखला में रामायण प्रदर्शन भी आयोजित कराया गया।

प्रतिकुलपति जी एवं विशिष्ट अतिथि द्वारा दीप प्रज्वलित कर कार्यक्रम की शुरुआत की गई। कल्पोदीप इंडिया के डॉ. पोम्पी पॉल द्वारा ओडिसी नृत्यशैली में शिव तांडव स्तोत्रम् प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम का समापन श्री कोकोर्डा पुत्रा द्वारा बाली मुखौटा नृत्य के द्वारा किया गया।

विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में 127 वर्षीय योगगुरु पद्मश्री स्वामी शिवानंद जी का भी आगमन हुआ। उन्होंने प्रतिकुलपति महोदय से शिष्टाचार भेंट की। भेंट के दौरान उन्हें गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सामाजिक विकास एवं पुनरुत्थानपरक कार्यों के बारे में अवगत कराया गया। 127 वर्षीय योगगुरु स्वामी शिवानंद जी को हाल ही में योग के क्षेत्र में योगदान के लिए भारत सरकार द्वारा पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

पद्मश्री स्वामी शिवानंद पिछले 50 वर्षों से पुरी में कुष्ठ रोगियों के लिए कार्य कर रहे हैं। पद्मश्री स्वामी शिवानंद जी ने पूज्य गुरुदेव की भाँति अपना संपूर्ण जीवन समाज-कल्याण के लिए दे दिया। मानव-कल्याण के लिए अपना जीवन समर्पण करने एवं योग के क्षेत्र में किए गए योगदान के लिए उन्हें वर्ष 2019 में योगरत्न, वसुंधरारत्न जैसे राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों द्वारा भी सम्मानित किया गया है।

इसी क्रम में माननीया केंद्रीय राज्यमंत्री, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण डॉ. भारती पँवार जी का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर

में आगमन हुआ। प्रतिकुलपति महोदय से शिष्टाचार भेंट के क्रम में उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण आदि जैसे क्षेत्रों में गायत्री परिवार द्वारा चलाई जा रही गतिविधियों से परिचित कराया गया। इसके पश्चात माननीया मंत्री ने परिसर में स्थित बाल्टिक संस्कृति एवं अध्ययन केंद्र तथा स्वावलंबन केंद्र का भ्रमण कर विश्वविद्यालय द्वारा चलाई जा रही गतिविधियों की सराहना की।

साथ ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन इकाई के मुख्य तकनीकी सलाहकार श्री हिरोशी ओशी का भी आगमन हुआ। उन्होंने परिसर में प्रतिकुलपति जी से मुलाकात और वर्तमान वैश्विक परिदृश्यों तथा जलवायु-परिवर्तन से निपटने में भारत की महत्त्वपूर्ण भूमिका के बारे में चर्चा की।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में लाट्विया के माननीय राजदूत ज्यूरिस बोन का आगमन हुआ। उन्होंने प्रतिकुलपति जी से भेंट की। इस दौरान भारत एवं बाल्टिक देशों के संबंधों को लेकर विविध बिंदुओं पर विचार-विमर्श किया गया। तत्पश्चात एक स्वागत कार्यक्रम भी आयोजित किया गया। जिसमें प्रतिकुलपति जी एवं अन्य शिक्षकगण उपस्थित रहे।

ओलंपिक बॉक्सिंग में भारत के लिए पदक जीतने वाली लवलीना बोरगोहेन का विश्वविद्यालय परिसर में आगमन हुआ। अपने आगमन के पश्चात लवलीना जी ने प्रतिकुलपति जी से भेंट कर मार्गदर्शन प्राप्त किया एवं उसके उपरांत श्रद्धेय कुलाधिपति जी एवं श्रद्धेया दीदी से आशीर्वाद प्राप्त किया। विदित हो कि भारत की स्टार मुक्केबाज लवलीना बोरगोहेन ने महज 23 साल की उम्र में ओलंपिक मेडल अपने नाम कर लिया था।

पदक जीतने के साथ ही लवलीना बोरगोहेन को दुनिया के महानतम मुक्केबाजों में शामिल किया जाने लगा, जिन्होंने ओलंपिक पदक के साथ-साथ विश्व चैंपियनशिप पदक भी जीता है। प्रोफेशनल मुक्केबाजी में जाने से पहले लवलीना पेरिस 2024 ओलंपिक में अपने पदक का रंग बदलने के लिए दृढ़संकल्पी हैं।

राज्यसभा के माननीय सांसद श्री रामचंद्र जांगड़ा जी का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ। उनके आगमन पर माननीय कुलपति महोदय ने उनका स्वागत किया।

इस अवसर माननीय सांसद महोदय एवं उनकी पूरी टीम को अखिल विश्व गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की चल रही समस्त गतिविधियों से परिचित कराया गया। माननीय सांसद महोदय और उनकी पूरी टीम ने विश्व-कल्याण एवं जनजागरण जैसी सभी गतिविधियों की खूब प्रसंशा की।

हाल ही में देहरादून स्थित यूपीईएस विश्वविद्यालय के माननीय कुलाधिपति डॉ. सुनील राय जी का सपरिवार आगमन हुआ। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आदरणीय कुलसचिव श्री बलदाऊ देवांगन जी ने गायत्री मंत्रचादर भेंट कर उनका स्वागत एवं अभिनंदन किया। इसके पश्चात उन्होंने डॉ. राय को विश्वविद्यालय का भ्रमण कराकर चल रही गतिविधियों से अवगत कराया।

इस अवसर पर डॉ. राय ने कहा कि मैं पूज्य गुरुदेव की संकल्पना पर स्थापित विश्वविद्यालय में आकर अपने आप को धन्य महसूस करता हूँ व साथ ही मैं परमपूज्य गुरुदेव के चरणों में कोटि-कोटि नमन भी करता हूँ। विदित हो कि डॉ. राय ने इंजीनियरिंग में अपनी उच्च शिक्षा पूर्ण कर 21 वर्षों तक भारतीय नौसेना में अपनी सेवाएँ दी

हैं। डॉ. राय को लगातार आठ वर्षों तक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वश्रेष्ठ उपाधियाँ भी दी गई हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में उत्तराखंड के पूर्व मुख्यमंत्री माननीय त्रिवेंद्र सिंह रावत, पूर्व राज्यमंत्री श्री शमशेर सत्यार्थी जी एवं उत्तराखंड बार काउंसिल के पूर्व अध्यक्ष श्री पृथ्वीराज चौहान जी का आगमन हुआ। आगमन के उपरांत उन्होंने प्रतिकुलपति जी से भेंट की। इस दौरान विविध विषयों एवं उत्तराखंड के चहुँमुखी विकास के कई पहलुओं पर चर्चा हुई।

इसके साथ ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय के बीच एक अनुबंध हुआ। उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति प्रोफेसर श्री दिनेश चंद्र शास्त्री एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी की गरिमामयी उपस्थिति में यह कार्य सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय की ओर से योग विज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. कामाख्या कुमार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की ओर से विभागाध्यक्ष डॉ. सुरेश लाल बर्णवाल ने उनके अनुबंध पर हस्ताक्षर किए। ❑

राजा कौणिक अपने पड़ोसी राज्य वज्जीगण पर विजय प्राप्त करना चाहता था, परंतु वह राज्य अत्यंत शक्तिशाली था। कौणिक ने अपने महामंत्री से परामर्श लिया—"पड़ोसी राज्य पर युद्ध द्वारा विजय पाना संभव नहीं है। क्या किया जाए?" महामंत्री ने राजा को एक योजना बताई, जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया। योजनानुसार घोषणा कर दी गई कि कौणिक ने नाराज होकर महामंत्री को देश निकाला दे दिया है। घोषणा के बाद महामंत्री शरणागत होकर पड़ोसी राजा के पास पहुँचा। राजा ने उसे शरण दे दी।

वहाँ रहकर महामंत्री ने प्रशासन के सभी अधिकारियों के मध्य मनमुटाव पैदा करना शुरू किया। जब उसे लगा कि उसका मनोरथ सिद्ध हो गया तो उसने राजा कौणिक को सूचना भिजवा दी। राजा कौणिक सेना लेकर आक्रमण के लिए पहुँचा। आक्रमण की सूचना की रणभेरी बजने पर भी इस राज्य से कोई लड़ने नहीं पहुँचा।

अपनी हार सामने देखकर राजा ने अपने योद्धाओं को बुलाकर इसका कारण पूछा तो सब बोले—"राजन! अमुक सेनापति मुझे शक्तिहीन बता रहा है, अमुक मंत्री ने मेरे विषय में बुरा कहा है, वह अधिकारी मेरी प्रगति से जलता है।"

राजा को अब समझ में आया कि उसकी सेना में एकदूसरे के प्रति संदेह और अविश्वास का जो स्वर उभरा है, उसके पीछे राजा कौणिक के महामंत्री की कूटनीति जिम्मेदार है। जो कार्य सेना न कर सकी, उसे आपस के मनमुटाव ने कर दिया।

अपनों से अपनी बात

कृपा और कोप, दोनों ही जिसके रूप, उनके स्मरण का मास

भारत की पावन भूमि की यह विशेषता रही है कि हमने, भारतीय संस्कृति ने सदा ही उद्‌देश्यों की उच्चता से, विचारों की तेजस्विता से, व्यक्तित्व की प्रखरता से, भावनाओं की उदात्तता से और आचरण की सदाशयता से उस शिवत्व के भाव को परिभाषित किया है, जो वर्तमान श्रावण मास का सन्निहित आध्यात्मिक भाव है।

भगवान शिव की ऊर्जा से यह मास न केवल अनुप्राणित होता है, बल्कि करोड़ों श्रद्धालुओं को, भक्तों को अनुप्राणित भी करता है। हिंदू पंचांग के अनुसार श्रावण मास, भारतीय मास गणना में पाँचवाँ मास है। तमिल गणना के अनुसार भी इसकी क्रम संख्या यही है, बस, नाम बदलकर 'अवनी' हो जाता है।

भारत एक कृषिप्रधान देश है इसलिए श्रावण या सावन के आगमन के साथ मानसून की जिस वर्षा का आगमन होता है—वह भी संपूर्ण भारतवर्ष में एक उत्सव का कारण बन जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से श्रावण के इस मास को हम पूर्णमास में व्रत रखते हुए भी मनाते हैं; क्योंकि जो दिव्यचेतना इस माह में प्रवाहित होती है, उसका अवगाहन करने के लिए शरीर व मन की शुद्धि आवश्यक हो जाती है।

श्रावण के सोमवार को रखा जाने वाला व्रत, उस दिन का रुद्राभिषेक और बहनों के द्वारा रखा जाने वाला 'मंगलागौरी व्रत' इस माह की धार्मिक व आध्यात्मिक विशेषता बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त श्रावण के ही मास में रक्षाबंधन, नाग पंचमी, अवनी अवित्तम, पवित्रा एकादशी जैसे पवित्र पर्व-त्योहारों का भी आगमन होता है तो सामाजिक दृष्टि से भी इस माह का महत्त्व कई गुना बढ़ जाता है।

भारत में अनेक स्थानों पर, चाहे वो हरिद्वार की काँवड़ यात्रा हो या देवघर की काँवड़ यात्रा—अनेक स्थानों पर श्रद्धालु श्रावण के इस पवित्र मास को एक साथ मिलकर एक गंभीर धार्मिक तथा आध्यात्मिक भाव के साथ मनाते हैं। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि उस शिवत्व के भाव पर एक बार चिंतन कर लिया जाए, जिस शिवत्व के भाव को जगाने के लिए इस मास के सारे पर्व एवं समस्त त्योहार आते हैं।

त्रिदेवों में से एक भगवान शिव—जो संहार से लेकर समावर्तन के समस्त कार्यों को अंजाम देते हैं—वो भारतीय चेतना के केंद्र में स्थित हैं। कोई उन्हें महादेव के नाम से जानता है तो कोई आदियोगी के, किसी के लिए वे मृत्युंजय हैं तो किसी के लिए महाकाल—इन सभी रूपों में भगवान शिव भारतीय संस्कृति की केंद्रीय चेतना के रूप में विद्यमान हैं।

उन्हीं भगवान शिव की चेतना का यदि आक्रोशित रूप जाग्रत होता है तो वे रुद्र के रूप में, भैरव या शूलिन के रूप में जाने जाते हैं। उन्हीं के अंदर का ज्ञान रूप जागता है तो वे चंद्रप्रकाश के रूप में, भालनेत्र के रूप में, बीजाध्यक्ष और महाबुद्धि के रूप में जाने जाते हैं। उन्हीं के अंदर का करुणामय रूप जाग्रत होता है तो वे नीलकंठ, महादेव या पालनहार कहलाते हैं और उन्हीं के भीतर का ईश्वरीय रूप स्वयंभू महाकाल या मृत्युंजय बन जाता है।

वे ही विश्वनाथ हैं, वे ही महेश हैं, वे ही शंभू हैं, वे ही शंकर हैं, वे ही त्रिलोचन हैं, वे ही शुभंकर हैं, वे ही त्रिलोकीनाथ हैं और वे ही धनेश्वर हैं।

आज जब मनुष्य के चिंतन की विकृति, सोच की वीभत्सता और वातावरण की विषाक्तता— मानवता और संस्कृति को पीड़ित करते नजर आते हैं। तो ऐसे में आज का अंधकार, जाग्रत पुरुषों से जागरण की माँग भी करता नजर आता है।

जब अंधकार ज्यादा होता है तो निश्चित रूप से गहराता तमस् अनेकों के मन को आतंकित करता है तो उसी समय में ये आत्मबलसंपन्न व्यक्तित्वों को, जाग्रत व्यक्तित्वों को जागरण के लिए प्रेरित भी करता है।

यदि मानवता पीड़ित होती है तो वो अंधकार अनेकों को कष्ट देता है, पर वही पीड़ा, भगवान को उनके अवतरण के लिए प्रेरित भी करती है। जब भगवान राम, ऋषियों की अस्थियों के ढेर को देखते हैं तो उनकी आँखों से आँसू गिरते हैं, पर वो आँसू ही उनको यह संकल्प लेने के लिए प्रेरित भी करते हैं कि **'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह'**।

राजा सगर के पुत्रों को शाप लगता है तो निश्चित रूप से उनका परिवार संताप सहन करता है, परंतु वही संताप फिर उनके परिवार में भगीरथ जैसे पुत्र को आकर्षित भी करके लाता है, जिनकी तपस्या की अग्नि माँ गंगा को भूमंडल पर प्रवाहित होने के लिए बाध्य कर देती है।

यह श्रावण का मास हमारे भीतर के उसी भागीरथी संकल्प को जगाने का मास है। पौराणिक आख्यानों में समुद्रमंथन की कथा आती है। कथा ये आती है कि जब महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण देवताओं की शक्ति कुंद हुई तो भगवान विष्णु ने उनको समुद्रमंथन की प्रेरणा दी, ताकि मंदारपर्वत को मथानी बनाकर, वासुकि नाग को रस्सी बनाकर जब समुद्र को मथा जाए तो समुद्र के गर्भ से रत्न निकल करके आ सकें।

वे रत्न पुनः देवताओं को उनकी खोई हुई शक्ति दिलाने में सहायक सिद्ध हों—समुद्रमंथन का भाव यही था। इस कथा में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण रूपक सन्निहित है। रूपक यही है कि रत्नों में पहला रत्न विष था और अंतिम अमृत।

स्पष्ट है कि यदि मानवता को अमृत का पान करना है तो पहले किसी को महादेव बनकर, नीलकंठ बनकर उस विष को सहन करना पड़ता है।

यदि माँ गंगा को धरती पर लाना है तो पहले भगीरथ को तपना पड़ता है। यदि भगवान राम को रामराज्य स्थापित करना पड़ता है तो पहले वनवास सहना पड़ता है। संकेत स्पष्ट है कि सौभाग्य की राहें कष्टों की वीथियों से गुजरने के बाद ही मिल पाती हैं। इसीलिए परमपूज्य गुरुदेव ने अखण्ड ज्योति की शुरुआत में ही लिख दिया—

सुधा बीज बोने से पहले
कालकूट पीना होगा।
पहन मौत का मुकुट विश्वहित
मानव को जीना होगा॥

श्रावण का पर्व यही याद रखने का पर्व है कि भारतीय चिंतन में ध्वंस और सृजन एक ही सत्य के दो पहलू हैं। जो आज पोषित होता है, वो कल सड़ता-गलता है। आज का खाना कल कूड़े में बदल जाता है। आज का बच्चा कल बूढ़े में बदल जाता है। आज का खास व्यक्ति कल लाश में बदल जाता है और तब उसकी अंत्येष्टि भी उतनी ही जरूरी हो जाती है, जितना कभी सम्मान हुआ करता था। यह विनाश ही उत्पादन का आधार है।

भगवान शिव को अर्पित इस माह में वे दोनों ही रूप मुखरता से विद्यमान हैं। उनका एकरूप सुजन का, कल्याण का, सौम्यता का प्रतीक है— जिस रूप में वे कैलास में निवास करते हैं, कल्याण का प्रतीक बनते हैं और श्रेष्ठता का रक्षण करते हैं।

उनका दूसरा रूप वो है, जिस रूप में वे श्मशान में निवास करते हैं, गले में उनके मुंडमाल है, मृत्यु का प्रतीक कालसर्प उनका यज्ञोपवीत है, त्रिशूल उनका अस्त्र है, रुद्र, वीरभद्र और भैरव उनके सहयोगी हैं। दोनों ही रूपों में, कल्याण में और कोप में उनके स्वरूप के स्मरण को करने वाला साधक श्रावण मास की आध्यात्मिक फलश्रुति को प्राप्त करता है।

❑

एक दिन इंद्रियों में इस बात को लेकर ठन गई कि कौन ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। मस्तिष्क ने सबसे पहले बोलना प्रारंभ किया और बोला कि यदि मस्तिष्क काम न करे तो मनुष्य पशु के समान हो जाएगा। उसकी बात बीच में काटते हुए हृदय बोला कि यदि हृदय धड़कना बंद कर दे तो पशु होना भी किसी काम का नहीं। हाथ-पैर कहाँ पीछे रहने वाले थे—वे उसी व्यग्रता के साथ बोले कि हाथ-पैर न हों तो धड़कते हृदय और चलते मस्तिष्क का रहना बिलकुल व्यर्थ है। एक स्थान पर बैठे रहें, पर कार्य कोई न कर पाएँ, ऐसा जीवन भी कोई जीवन है?

वाद-विवाद का कोई निष्कर्ष न निकलता देख उन्होंने भगवान से गुहार लगाई। विधाता के यहाँ गोष्ठी का आयोजन किया गया। सभी अंग एवं इंद्रियाँ अपने-अपने पक्ष की बातें लेकर वहाँ पहुँचे और उनको प्रस्तुत करने के बाद विधाता की ओर आशा भरी निगाहों से देखने लगे। विधाता मुस्कराए और बोले—"तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो तुम्हें तुम्हारी बहस में ही मिल गया था।" अंग एवं इंद्रियाँ यह सुनकर आश्चर्य से बोले—"ऐसा कब हुआ था प्रभु?" विधाता बोले—"जब तुम अपने-अपने पक्ष रख रहे थे तो यह नहीं समझे कि तुममें से एक के बिना भी शरीर का उपयोग क्या है? तुम सबके साथ रहने पर ही तो वह उपयोगी है, एकांगी तो वह किसी काम का नहीं।" सबकी समझ में आ गया कि महत्त्व एकता से है, व्यर्थ के एकांगी अहंकार से नहीं।

युवा वर्ग से अपेक्षा

बहुत जरूरत भारत माँ को, ऐसे वीर जवानों की।
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की॥

व्यसन मुक्त हो देश हमारा, रोग-शोक से दूर रहें,
पवन सुगंधित बहे चतुर्दिक, नदियाँ शुचितापूर्ण बहें,
युवा हमें श्रमशील चाहिए, गति मोड़ें तूफानों की।
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की॥

सज्जन शालीन युवा भारत के, द्रुतगति से बढ़ते जाएँ,
जब तक मिले न लक्ष्य सुनिश्चित, तब तक श्रम करते जाएँ,
नए सृजन हित बहुत जरूरी, साधक, प्रतिभावानों की।
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की॥

जिसमें हो बल-वीर्य-पराक्रम, अनुशासित-मर्यादित हों,
अगुवाई को आगे आएँ, नियमों से संचालित हों,
सृजनशील अभियान चलाएँ, ऐसे निष्ठावानों की।
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की॥

युवकों ने ही क्रांति मचाई, युवकों ने निर्माण किया,
अनाचार कर दूर लोकहित, युवकों ने बलिदान दिया,
प्रतिभा सहित जरूरत युग को, चरित्रनिष्ठ धनवानों की।
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की॥

—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

ब्रिटिश पार्लियामेंट में आयोजित कार्यक्रम में गायत्रीतीर्थ शांतिकुंज द्वारा संचालित देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति डॉ. चिन्मय पंड्या को भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्मिकता के विश्वव्यापी विस्तार के लिए भारत गौरव सम्मान से विभूषित किया गया

गायत्री जयंती पर्व युगतीर्थ शांतिकुंज–हरिद्वार में श्रद्धासिक्त वातावरण में सोल्लास संपन्न

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-07-2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

ओंकारेश्वर तीर्थ (मध्यप्रदेश) में आदिगुरु शंकराचार्य की स्मृति में स्थापित किए जाने वाले गुरुकुल, संग्रहालय एवं शोधकेंद्र 'एकात्म धाम' परियोजना के औपचारिक शुभारंभ के कार्यक्रम में विशिष्ट गणमान्यों के साथ प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा–वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल–akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org